• पुस्तक

अनुराग

• प्रकाशक व सम्पादक

अमृतलाल नाहर

• प्रथम संस्करण १९७५

एक हजार प्रति

श्रमण भगवान् महावीर निर्वाण शताब्दि वर्ष

वि० सं० २०३२

• मुद्रक

फ्रैण्ड्स प्रिण्टर्स एण्ड स्टेशनर्स

जोहरी बाजार, जयपुर–३

• मूल्य

५ रुपये ५० पैसे

संदेश

KARNATAKA GOVERNOR'S SECRETARIAT
Raj Bhavan Bangalore

२६ सितम्बर, १६७५

राज्यपाल महोदय को यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप भगवान् महावीर के २५००वें निर्वाण महोत्सव वर्ष के समापन माह में उनकी श्रद्धांजलि के रूप में 'अनुराग' पत्रिका का प्रकाशन करने जा रहे हैं। आप के इस प्रकाशन की सफलता के लिये वे अपनी शुभकामनायें भेजते हैं।

आपका
के० जि० कृष्णन
राज्यपाल का निजी सचिव

१६, अकबर रोड
नई दिल्ली-११००११

३ सितम्बर, १९७५

आपका २४-६-७५ का पत्र मिला। यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप भगवान् महावीर के २५००वें निर्वाणोत्सव पर 'अनुराग' नामक पत्रिका का प्रकाशन करने जा रहे हैं। आपका प्रयास सफल और फलीभूत हो ऐसी मेरी शुभकामनायें हैं।

आपका
राज बहादुर

मुख्य मंत्री, राजस्थान
जयपुर
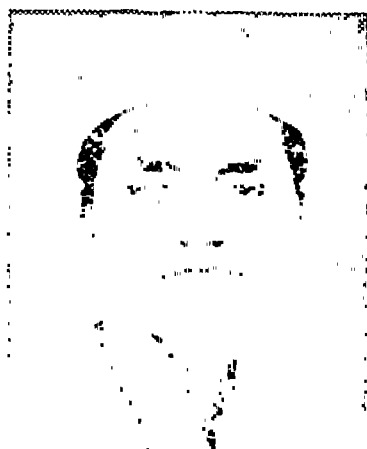
मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आपके द्वारा भगवान् महावीर के २५००वें निर्वाण महोत्सव वर्ष में 'अनुराग' स्मारिका का प्रकाशन किया जा रहा है।

देश आज जिन परिस्थितियों से गुजर रहा है उनमें भगवान् महावीर के सिद्धान्तों से मार्ग दर्शन प्राप्त करना आवश्यक है। हमें राष्ट्रीय जीवन को अनुशासनबद्ध और कर्तव्यनिष्ठ बनाना है।

मैं आशा करता हूँ कि आपकी स्मारिका में इस दृष्टि से उपयोगी सामग्री का प्रकाशन किया जायेगा।

मैं आपके प्रकाशन की सफलता चाहता हूँ।

हरिदेव जोशी

रांज० प्रदेश कांग्रेस कमेटी
पुलिस लाइन के सामने
स्टेशन रोड, जयपुर-१

पत्रांक-५००४

३० सितम्बर, १९७५

यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि भगवान् महावीर के २५००वें निर्वाण महोत्सव वर्ष के समापन माह में श्रद्धांजलि के रूप में आप 'अनुराग' स्मारिका का प्रकाशन करने जा रहे हैं।

मैं आपके इस 'अनुराग' प्रकाशन की हृदय से मंगल कामना करता हूँ।

सधन्यवाद।

आपका
गिरधारीलाल व्यास
अध्यक्ष

शिक्षा मंत्री
जयपुर
२७ सितम्बर, १९७५
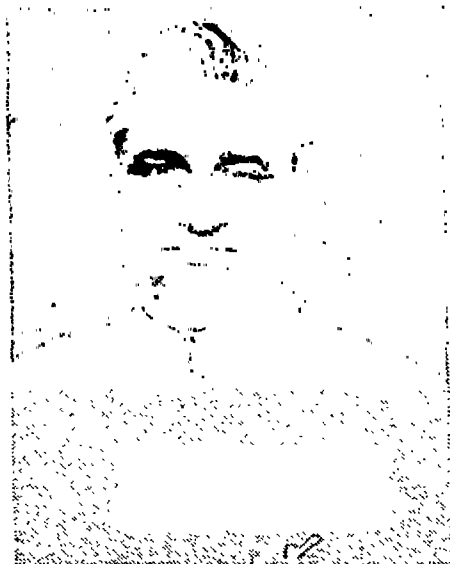
मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि भगवान् महावीर के २५००वें निर्वाण महोत्सव के समापन माह में इस महान् एवं पावन आत्मा को श्रद्धांजलि के रूप में 'अनुराग' का प्रकाशन किया जा रहा है। यह हर्ष का विषय है कि इसमें जैन व अन्य विद्वानों एवं लेखकों के श्रद्धा सुमन के रूप में लेख व कविता सम्मिलित किये जायेंगे।

मैं उपरोक्त प्रकाशन की सफलता की हार्दिक शुभकामनायें भेजता हूँ।

आपका सद्भावी,
खेतसिंह राठौड

आयुक्त एवं शासन सचिव,

सिंचाई, विद्युत् एवं सार्वजनिक निर्माण विभाग,

जयपुर, राजस्थान

यह जानकर बहुत प्रसन्नता हुई कि आप भगवान् महावीर स्वामी के २५००वें निर्वाण महोत्सव वर्ष के अवसर पर उस महान् एवं पावन आत्मा को श्रद्धांजलि के रूप में 'अनुराग' का प्रकाशन करने जा रहे हैं। भगवान् महावीर के द्वारा जो मार्ग दिखाये गये हैं वे आज भी मानवमात्र के लिये बहुत ही उपयोगी व शान्तिदायक है। भगवान् महावीर स्वामी के उपदेशों को आप इस प्रकाशन के द्वारा जन-जन के पहुँचाने का जो प्रयास कर रहे हैं वह स्वागत योग्य है।

आपके इस प्रयास के लिये मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ एवं बधाई।

जगन्नाथसिंह मेहता

जिला शिक्षा अधिकारी

चित्तौड़गढ़

दिनांक १-१०-७५

आपका दिनांक २४ सितम्बर, ७५ का पत्र प्राप्त हुआ। बड़ी प्रसन्नता है कि भगवान् महावीर के २५००वें निर्वाण महोत्सव वर्ष के समापन माह में उस महान् एवं पावन आत्मा को श्रद्धांजलि रूप में 'अनुराग' का प्रकाशन करने जा रहे हैं।

भगवान् महावीर ने समूचे विश्व को आलोकित कर प्रत्येक प्राणी को अपने कर्तव्यों के निर्वाह के लिये सन्देश दिये हैं। यदि मानव समाज उनके द्वारा दिये गये सन्देशों को हृदयंगम कर उनके अनुसार विचरण करेगा तो निश्चित रूप से विश्व का कल्याण होगा।

पूर्ण विश्वास है कि 'अनुराग' का कलेवर पाठकों के लिये शिक्षा-प्रद, उनके मार्ग को प्रशस्त करने वाला तथा भगवान् महावीर के विचारों को प्रतिपादित करने वाला होगा।

प्रकाशन की सफलता के लिये शुभकामनाओं सहित।

सद्भावी

केशरीलाल भण्डारी

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि श्री अमृतलालजी नाहर श्रमण भगवान् महावीर के परि निर्वाण महोत्सव के समापन पर पत्रिका 'अनुराग' का प्रकाशन कर रहे हैं। ये एक उत्साही एवं कर्मठ कार्यकर्ता एवं समाज सेवी हैं। मैं कृति की सफलता के लिये शुभकामनाएँ प्रेषित कर रहा हूं।

शांतिलाल नाहर
अध्यक्ष
जैन नवयुवक मण्डल
छोटी सादड़ी (राज०)

जिन परिस्थितियों और जिस वातावरण में महावीर जन्मे, पले और बढ़े, जिन समस्याओं से भूझे, उनका जो समाधान उन्होंने प्रस्तुत किया उसकी संक्षिप्त तथा रोचक झांकी आप श्री अमृतलालजी नाहर के 'अनुराग' के प्रकाशन में पायेंगे।

दिनांक २१-११-७५

नेमिचन्द्र सुराना
प्रधानाध्यापक
श्री गोदावत जैन उच्चतर माध्यमिक विद्यालय
छोटी सादड़ी (राज०)

बघाना (म० प्र०)
दिनांक २१-११-७५

भगवान् महावीर के २५००वें निर्वाण महोत्सव के समापन पर श्री अमृतलाल जी नाहर एक कृति 'अनुराग' का प्रकाशन कर रहे हैं। यह एक हर्ष का विषय है। श्री अमृतलालजी की इस कृति से मैं अत्यधिक प्रभावित हुआ हूं, क्योंकि न तो ये कोई साहित्यकार हैं और न ही कोई विद्वान्। फिर भी इस प्रकार का यह प्रयास समाज सेवा का एक अनूठा प्रयास है। मानवीय दृष्टिकोण के परिप्रेक्ष्य में यदि मैं इनकी सराहना करूं तो अत्युक्ति न होगी। इसके लिये श्री नाहर साधुवाद के पात्र हैं। हार्दिक मंगल कामनाओं के साथ।

गुणवंतलाल गोदावत
अध्यक्ष
श्री गोदावत जैन उच्चत्तर माध्यमिक विद्यालय
संचालन समिति (प्रवन्धकारिणी) छोटी सादड़ी (राज०)
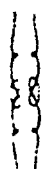
समर्पित

पूज्य पिता श्री पूनमचन्दजी नाहर

की

पुण्य स्मृति को ।

अमृतलाल नाहर
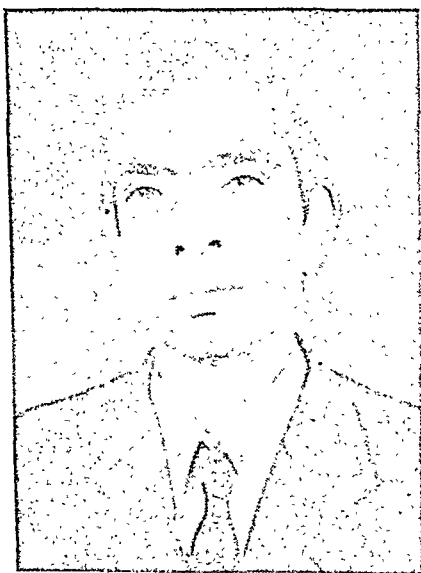
प्रकाशक व सम्पादक

हृदय स्रोत की बूँदें

दर्शन और वाणी का समन्वित रूप साहित्य है। वाणी बिना दर्शन के निरर्थक है और बिना वाणी के दर्शन प्रभावहीन ! दर्शन को गति एवं प्रसार वाणी के ही माध्यम से प्राप्त होते हैं। 'अनुराग' के मूल में भी दर्शन ही है जिसे हमने, कृति के विद्वानों ने वाणी प्रदान की है और जिसके एक मात्र स्रोत भगवान् महावीर हैं—मानव कल्याण और मुक्ति के दूत ! स्वाभाविक है कि ऐसे महापुरुष का सन्देश उसके अनुयायी, उसके समर्थक अथवा उसके प्रति आकर्षण रखने वाले लोग देश-विदेश धरती के कौने-कौने में पहुँचाने का प्रयास करें। सफलता चाहे किसी भी सीमा तक मिले, लक्ष्य अथवा फल कार्य में ही निहित होता है। 'अनुराग' की मूल भावना और हमारे प्रयास में यही चाह रही, यही शक्ति रही।

वर्तमान में जहाँ वैज्ञानिक गति, यांत्रिक जीवन, शोषण और अत्याचार की कहानी हर चौराहे, हर घर, हर दिल में समायी हुई है, मनुष्य को थमकर, चैन की सांस लेकर, भूत और वर्तमान पर सोचने की फुरसत नहीं। क्रूर भविष्य से भयभीत है फिर भी उसके परिणामों से परे रहने के साधनों को खोजने की चाह नहीं। ऐसे भागते मनुष्य को कुछ क्षणों के लिए

रोककर, दार्शनिक धर्म प्रवर्तक भविष्य के खतरों का बोध कराता है। चाहे आधुनिकों के शब्दों में पतन ही कहो, शान्ति और सुख के मार्ग का दिशा ज्ञान कराता है। संसार को सर्व-नाश से बचाने के लिये, सुख-समतामय सुन्दर सृष्टि की रचना के लिये।

हर्ष है कि इस वर्ष २५००वें निर्वाण वर्ष में उस महापुरुष की बात अधिक लोगों के हृदयों तक पहुँची। उसे करोड़ों ने सुना और लाखों ने समझा, निश्चित कहना कठिन है पर हजारों का हृदय परिवर्तन भी हुआ तो महान् उपलब्धि है।

'अनुराग' के लिए क्या कहें। भगवान् महावीर रूपी विशाल महासमुद्र के जल की यह एक बून्द है। यदि किसी तप्त हृदय को थोड़ीसी शीतलता भी इसने प्रदान की तो बस हमें सर्वस्व मिल गया, हम धन्य हो गये, हमारी मंजिल हमें मिल गयी।

अन्त में ऐसी कृति के निर्माण में, इस पवित्र अनुष्ठान में जिन्होंने योगदान दिया, उनको शतश: धन्यवाद ! आदरणीय केवलचन्दजी वैद, चम्पालालजी सुराना, मदनलालजी नाहर एवं चांदमलजी नाहर का आशीर्वाद सदा मेरे साथ रहा; श्रीमती विजयादेवी सुराना एवं श्रीमती भंवरीबाई का वात्सल्य मुझे गति प्रदान करता रहा। विज्ञापनदाताओं द्वारा विज्ञापन दे आर्थिक सहयोग प्रदत्त किया उसके लिए हृदय से आभारी हूँ।

डॉ० नरेन्द्र भानावत व बहिन डॉ० श्रीमती शान्ता भानावत ने कृति को सजीव एवं आकर्षक बनाने में बहुमूल्य सहयोग दिया जिसके लिए हृदय आभारी रहेगा ही। श्री सोहनलाल जैन का साहित्यिक मार्ग दर्शन एवं कृति की सफलता के लिए हर सम्भव योगदान तथा श्री पुखराजजी जैन का संकलन कृति के निर्माण में महत्त्वपूर्ण सहयोग कहूं तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

"जैन नवयुवक मण्डल" के सभी बन्धु एवं श्री सूरजमलजी नाहर, श्री शान्तिलालजी नाहर, श्री माणकलालजी कोठारी, श्री वीरेन्द्रकुमारजी डागा, श्री गुणवन्तलालजी बण्डी तथा श्री अमृतलालजी बया श्री मांगीलालजी कोठारी एवं लक्ष्मीलालजी कोठारी मुझे हर समय निराशा से बचाते रहे।

सरस्वती के पावन मन्दिर में कार्यरत रहते हुए भी समाज-सेवा की प्रबल अभिलाषा अन्तर्मन में सदैव विद्यमान रहती है। इसी अभिलाषा के अधीन समाजसेवा हेतु कुछ रचनात्मक कार्य करने की प्रेरणा भगवान् महावीर के इस पुण्य परिनिर्वाण दिवस पर प्राप्त हुई इसे रोकना संभव नहीं हो सका और मैंने इसे गति देना स्वीकार कर ही लिया। इसी का परिणाम 'अनुराग' प्रथम प्रयास के रूप में है। न मैं साहित्यकार हूं न विद्वता की परिभाषा में समाहित विद्वान् हूं। मैं क्या हूं ? सिर्फ एक उत्साही युवक–कुछ कर लेने की चाह में, कुछ पा जाने की इच्छा लिये मां सरस्वती के मन्दिर की ओर बेतहाशा भागता हुआ दर्शनार्थी। बस और कुछ नहीं।

दिनांक ३-११-७५
दीपावली
२५००वां निर्वाण महोत्सव समापन दिवस

अमृतलाल नाहर

"अन्तःकरण से उद्भूत होने वाला करुणा भाव
का शीतल स्रोत दूसरों का संताप मिटाता ही है।"

❖

अनुक्रमणिका

प्रथम खण्ड

द्वितीय खण्ड

तृतीय खण्ड

प्रथम खण्ड

महावीर
जीवन और दर्शन

"यदि सुख चाहते हो, त्याग धम अपनाओ, मोही मत बनो,
कभी भी ममता में मत बहो"

चन्दनबाला द्वारा श्रमण
भगवान् महावीर को उड़द के बाकले
बहराते हुए ।

वोर - स्तुति

वन्दन :

अनन्त ज्ञानमतीत दोषम्
अबाध्य सिद्धान्तममर्त्य पूज्यम्
श्री वीतरागम् जिनराज मुख्यम्
नमामि वीरम् गिरिसारधीरम्

याचन :

यस्यज्ञानमनन्तवस्तुविषयः यः पूज्यते देवतैः ।
नित्यम् यस्य वचौ न दुर्नयकृतैः कोलाहलैः लुप्यते ।।
रागद्वेष मुखद्विषां च परिषद क्षिप्ताक्षणाद्येन सः ।
सः श्री वीर विभू विध्वत कलुषाम् बुद्धिविधताम् मम ।।

दर्शन :

यदीये चैतन्ये मुकुर इव भावाश्चिदचितः
समंभान्ति ध्रौव्य व्ययजनिलसन्तोऽन्तरहितः ।
जगत्साक्षी मार्गः प्रकट न परो भानुरिवयो
महावीर स्वामीः नयन पथगामी भवतु नः ।।

: जीवन दर्पण :

० तीर्थङ्कर-क्रम	:	चौबीसवें तीर्थङ्कर
० नाम	:	वर्द्धमान (सन्मति, वीर, महावीर)
० जन्म स्थान	:	कुण्ड ग्राम (वैशाली)
० पिता	:	सिद्धार्थ
० माता	:	त्रिशला
० वंश	:	नात (ज्ञातृ)
० जन्म तिथि	:	चैत्र शुक्ला १३ (५९९ ई० पू०)
० नक्षत्र	:	उत्तरा फाल्गुनि
० राशि	:	कन्या
० महादशा	:	बृहस्पति
० दशा	:	शनि
० अंतदशा	:	बुध
० वर्ण	:	स्वर्ण
० चिह्न	:	सिंह
० गृहस्थिति	:	अविवाहित
० कुमार काल	:	२८ वर्ष ७ माह १२ दिन
० दीक्षा तिथि	:	मंगसिर सुदी १० (५६९ ई० पू०)
० तपावधि	:	१२ वर्ष ५ माह १५ दिन
० देशनापूर्व मौन	:	६६ दिन
० कैवल्य प्राप्ति	:	बैशाख सुदी १० (५५७ ई० पू०)
० देशनाकाल	:	२९ वर्ष ३ मास २४ दिन
० निर्वाण तिथि	:	कार्तिक कृष्णा ३० (५२७ ई० पू०)
० निर्वाण स्थल	:	पावापुरी (उत्तर उदेश)
० आयुष्य	:	७१ वर्ष ४ माह २५ दिन
० शिष्य सम्पदा	:	चौदह हजार श्रमण; छत्तीस हजार श्रमणी

भगवान् महावीर और उनका सार्वजनीन मार्ग

• रिषभदास रांका

जैनियों की मान्यता है कि उनका धर्म अतिप्राचीन काल से चला आ रहा है। पच्चीस सौ साल पहले उनके इस युग के २४वें तीर्थङ्कर भगवान महावीर हुए, जो न तो प्रथम थे और न ही अन्तिम ।

कुछ वर्ष पहले तीर्थङ्कर महावीर स्वामी को ही जैन धर्म के संस्थापक माना जाता था और कई तो उसे बौद्ध धर्म या हिन्दू धर्म की शाखा ही बताते थे। लेकिन उपलब्ध ऐतिहासिक सामग्री के आधार पर तेईसवें तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ को ऐतिहासिक माना गया और मोहन जोदडो के उत्खनन से जैन संस्कृति को आर्यों के भारत में आने के पहले की माना जाने लगा। आर्यों के भारत में आने के पहले यहां कोई उन्नत संस्कृति थी, ऐसा कहा जाने लगा। आर्यों का भारत में आक्रमण हो चाहे वे यहां के मूल निवासी, परन्तु जैन संस्कृति एवं वैदिक दोनों ही प्राचीन हैं उसमें संदेह के लिए कोई गुंजाइश नहीं रह गई।

आज जो जैन संस्कृति कही जाती है उसका प्राचीन काल में जैन नाम नहीं था। श्रमण, व्रात्य, द्रविड़, आर्हत्, पाणि आदि नामों से यह संस्कृति पहचानी जाती थी। खुद महावीर के जमाने में भी निर्ग्रन्थ नाम से ही परिचय मिलता है। जैन नाम तो जिन के उपासक के रूप में महावीर के बाद प्रचलित हुआ।

अपने आप पर विजय प्राप्त करने वाले 'जिन' और उसके उपासक—उस मार्ग पर चलने वाले 'जैन'।

उनके विशिष्ट और महत्वपूर्ण विचार पद्धति के कारण जैन नाम पड़ा और वह सार्थक भी है।

जैन साधना का हार्द है—अपने आप पर विजय पाना या अपने पुरुषार्थ से जीव से शिव, आत्मा से परमात्मा या नर से नारायण बनना।

जैनी मानते हैं कि हर जीव या आत्मा में पूर्णत्व को परमात्म तत्व को पाने की क्षमता है। इनकी मान्यता है कि मनुष्य जब अपने दोषों से मुक्त बन जाता है,

पूर्णत्व को पा जाता है। वे ऐसे ईश्वर को नहीं मानते हैं कि जिसने इस जगत् का निर्माण किया हो या जो जगत् का व्यवहार चलाता हो।

सर्वशक्तिमान ईश्वर की मान्यता न होने से सहज ही उनकी साधना पद्धति में ईश्वर की ऐसी भक्ति को स्थान नहीं जो भक्तों को कुछ दें। उन्होंने परमात्मा को वीतराग माना है। उसकी प्रार्थना करने पर या भक्ति करने पर कुछ भी नहीं मिलता इसलिए उनकी भक्ति कामनिक नहीं हो सकती। वे तीर्थङ्कर या उपासक को पूर्णत्व प्राप्ति का मार्ग-दर्शक मानते हैं। उनकी भक्ति, ध्यान या स्तुति इसलिए करते हैं कि उन्होंने जिस तरह से अपना विकास कर दोषों, त्रुटियों या कमियों से छुटकारा या मुक्ति पायी, हम भी वह पावें।

इसलिए महावीर को अपना मार्ग-दर्शक तीर्थङ्कर मानते हैं और उनका स्थान सहज में भगवान, ईश्वर, उपास्य देव का बन जाता है।

उस मार्ग से चलकर पूर्ण विकास करने वाले सिद्ध कहलाते हैं। तीर्थङ्कर का मार्ग-दृष्टा का पद वे नहीं पाते हालांकि आत्मसिद्धि की अवस्था में कोई अन्तर नहीं होता।

महावीर मार्ग-दृष्टा तीर्थङ्कर थे। उनके समय में अनेक सिद्ध हुए पर महावीर का स्थान सर्वोच्च इसलिए है कि वे मार्ग-दृष्टा थे।

महावीर के धर्म की विशेषता यह है कि वे भक्त को दीन या मांगने वाला भिखारी नहीं बनाते अपितु उनकी भक्ति कर भक्त उनका स्थान पा सकता है। पूर्णत्व को प्राप्त कर उनकी तरह पूर्ण बन जाता है। उनकी भक्ति में दीनता या दासता को स्थान नहीं, आत्मविश्वास और पुरुषार्थ को महत्व दिया गया है।

पूर्णत्व प्राप्ति की ओर कदम बढ़ाने में धर्माचरण को प्राथमिकता दी गई है। महावीर अपनी स्तुति या भक्ति को प्राधान्य न देकर मांगल्य प्राप्ति के लिए धर्म अपनाने को कहते हैं, यह भी किसी विशिष्ठ धर्म को अपनाने को नहीं परन्तु अहिंसा, संयम और तप को अपनाने को कहते हैं। इसमें गुणों का प्राधान्य है न कि व्यक्ति विशेष की भक्ति को।

महावीर ने अपने उद्देश्य में प्रथम स्थान अहिंसा को दिया है, अहिंसा का अर्थ बताया है समता। समता की साधना को प्राधान्य दिया गया है। अहिंसा की उत्कृष्ट उपासना ही जीवन सिद्धि मानी गई है।

अहिंसा साधक का ही कल्याण करती है ऐसा नहीं, वह सबके लिए कल्याणकारी है। उसकी उपासना—सबके प्रति समता का व्यवहार तभी हो सकता है जब साधक पूरी सावधानी के साथ प्राणीमात्र के प्रति संयम का आचरण करे।

महावीर की यही विशेषता है कि उन्होंने सभी के प्रति समता का व्यवहार किया। समता का व्यवहार बिना संयम के नहीं होता और जीवन में संयम अपनाने पर कुछ सहना तो पड़ता ही है।

अहिंसा की प्रक्रिया किसी को न मारने तक ही पूरी नहीं होती पर अहिंसा का साधक दूसरों से हिंसा नहीं करवाता इतना ही नहीं पर हिंसा का अनुमोदन भी नहीं करता। मन, वचन और काया से किसी को न दुखाया जाय ऐसा ही उसका प्रयत्न होता है।

संसार के सभी प्राणी सुख से जीना पसंद करते हैं। सुख प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील हैं। पर प्रत्यक्ष सुखी बहुत कम देखने में आते हैं।

भारतीय संस्कृति की तीनों परम्पराओं ने सुख प्राप्ति के जो उपाय बताये, वे भिन्न दिखाई पड़ते हैं। वैदिक या ब्राह्मण संस्कृति ने दुःख का कारण अज्ञान माना है, बौद्ध संस्कृति ने तृष्णा को दुःख का कारण कहा है जब कि जैन परम्परा में हिंसा या विषमता को दुःख का कारण माना है। तीनों दुःख मिटाने के कारण भिन्न-भिन्न लगते हैं, पर उनमें ऐक्य ही समाया हुआ है।

महावीर ने प्राणीमात्र के प्रति समता के व्यवहार को साधना का ध्येय माना हो तो भी उस ध्येय की प्राप्ति में अज्ञान और तृष्णा को मिटाने की बात आ ही जाती है। इसीलिए महावीर ने आगे चलकर प्रथम ज्ञान, फिर दया या अहिंसा को रखा है। क्योंकि अज्ञानी श्रेय और पाप में भेद नहीं कर पाता और तृष्णा की कभी तृप्ति नहीं होती।

फिर भी महावीर ने समता को प्राधान्य दिया है। सुखपूर्ण जीने के लिए अहिंसा को सर्वोपरि माना। सब जीवों के प्रति संयम के व्यवहार से ही अहिंसा की उपासना होती है।

हिंसा वैर को बढ़ानेवाली है। हिंसा से भयानक दुःखों की निष्पत्ति होती है।

महावीर ने जैसे समता या अहिंसा को प्रथम स्थान दिया है उसके पीछे यह निष्ठा है कि अपने सुख-दुःखों का कर्ता मनुष्य स्वयं ही है। अपने भाग्य का विधाता दूसरा नहीं वरन् स्वयं ही है। जो जैसा काम करता है वैसे फल उसे मिलते हैं। दुष्कृत्यों से प्राप्त परिणामों को मिटाया नहीं जा सकता।

बिलकुल सीधी बात है कि करेले की बेल में अंगूर नहीं लग सकते। यदि किसी को सुख से रहने की इच्छा है तो वह दूसरों के सुख में बाधक न बने। दूसरों को दुःखी बना कर कोई सुखी नहीं होता। दुष्कर्म कर सत्कर्म के फल पाने की आशा व्यर्थ है।

अपने जीवन में पल-पल इस बात का अनुभव होते रहता है। इसलिए महावीर के धर्म या उपदेश कुछ गूढ़ नहीं है, उन्होंने मानव को ठीक से जीने की कला बताई है। उनका धर्म, जीवन धर्म है। उनके सिद्धांत मानव स्वभाव की अनुभूतियों पर आधारित हैं।

यदि तुम्हें कष्ट अच्छा नहीं लगता तो तुम दूसरों को कष्ट न दो। यह मार्ग सरल और सीधा होने पर भी जटिल इसलिए लगता है कि हम अपनी समस्या सुलझाने में अपनी शक्ति लगाने के बदले में दूसरों से अपेक्षा रखते हैं। महावीर तो यहां तक कहते हैं कि यदि कोई शत्रुता करे तो भी तुम्हें उसके साथ सद्व्यवहार कर उसका अच्छा फल प्राप्त करना चाहिए।

"तेरे सुख-दुःख का कारण तू ही है। तेरा शत्रु या मित्र तू ही है। तेरी आत्मा ही सभी सुख देने वाली कामधेनु है और तेरी आत्मा ही अनन्त दुःख देनेवाली कूट शाल्मली वृक्ष है। जब तू सन्मार्ग अपनाता है तो तुझसे बढ़कर तेरा दूसरा कोई मित्र नहीं और जब तू कुमार्ग से चले तो तुझसे बढ़कर दूसरा कोई तेरा शत्रु नहीं।"

"इसलिए दुःख देनेवाला कोई दूसरा नहीं है। सुख के लिए दूसरों से झगड़ने की अपेक्षा अपनी आत्मा से संघर्ष कर, उस पर विजय प्राप्त करने से ही सुख प्राप्त होता है।"

अपने आपको जीतना आसान नहीं होता। बड़ा कठिन काम है। इसलिए महावीर कहते हैं कि संग्राम या लड़ाई में लाखों योद्धा जीतने वालों से आत्मा को जीतने वाला सर्वश्रेष्ठ विजेता है। बाहरी शत्रुओं को जीतने वाला वीर कहलाता है पर महावीर वह होता है जो अपने आपको जीतता है।

महावीर के मार्ग में न कोई गूढ़ता है और न कठिनता ही। हमारे विचार और आदतें ऐसी बन गई हैं कि हम को यह मार्ग कठिन लगता है। यदि सद्व्यवहार करना शुरू करें तो उसके बदले में हमें सद्व्यवहार ही मिलेगा।

सिर्फ दिशा बदलने की जरूरत है। सद्व्यवहार और सद्गुणों से कभी दुःख नहीं हो सकता, इस निष्ठा को अपनाना है। सद् के प्रति निष्ठा ही आस्तिकता है। और इस सद् मार्ग पर अविश्वास करना ही मिथ्यात्व है।

समता का व्यवहार कराना है तो जीवन में सत्य अपने आप आजावेगा। जिसका जीवन समता पर आधारित होता है उसकी भाषा में कटुता नहीं रहेगी, निरर्थक दूसरे को हानि या दुःख पहुँचे ऐसी भाषा का व्यवहार ही नहीं हो सकता। सदा अप्रमत्त या जाग्रत रह कर सत्य का उपासक ध्यान रखेगा कि उसकी वाणी से किसी को कष्ट या हानि न हो।

समता की उपासना करने वाला अपनी मर्यादा समझता है। वह आत्म-विकास के पद पर चलता है फिर भी उसका इतना विकास तो नहीं हो गया है कि संसार के सभी विषयों का ज्ञान उसे हो, यह संभव भी नहीं है इसलिए वह दूसरों की बात सुनकर उसमें जो कुछ भी तथ्य हो उसे ग्रहण करता है। अपना दृष्टिकोण व्यापक रखता है। आत्म साधक आग्रही नहीं होता उसकी दृष्टि सत्यग्राही होती है। इसलिए भगवान् महावीर के उपदेशों में अनेकांत या स्याद्वाद पाया जाता है। वह कभी दूसरे की परम्परा का खण्डन नहीं करता। इसलिए प्राचीन आचार्यों ने कहा है कि संसार के सभी धर्म या विचारों को एक जगह लाया जाय वही तो जैन धर्म है।

दृष्टि व्यापक हो आग्रही न बना जाए इसलिए महावीर ने विनय को सभी सुख और समृद्धियों का कारण माना है और अविनय को विपत्तियों का आगार।

महावीर का धर्म सिर्फ कुछ आचार धर्म पालन के लिए बताये आचारों तक ही सीमित नहीं है वह जीवन व्यवहार के लिए भी है। उसे अपनाने से जीवन सुखी बनता है।

इस धर्म के पालन से हमारा व्यवहार कैसे चलेगा ? यह तो त्यागियों का—संतों का धर्म है। हम तो मन्दिर में जायें या सामायिक करें इतना ही काफी हैं। क्योंकि जीवन में होनेवाले पापों से मन्दिर में जाकर सामायिक, प्रतिक्रमण करने या तपस्या करने से मुक्ति मिल जाती है। व्यवसाय या जीवन के दूसरे क्षेत्रों में धर्म या व्यवहार असंभव है।

यदि आपकी ऐसी मान्यता हो तो यह ठीक नहीं है। यह धर्म कुछ व्यक्तियों के पालने या म्युजियम में रखने जैसा नहीं है यह तो जन-जन के जीवन में प्रकाश देने वाला सर्वकल्याणकारी धर्म है। उसे अपनाने से हमारा जीवन निश्चित ही सुखी समृद्ध होना चाहिए। धर्म के पालन से कभी कोई दुःखी नहीं हो सकता क्योंकि इस धर्म को इहलोक और परलोक दोनों ही स्थानों में कल्याणप्रद माना गया है। उसे जीवन में लानेवाला दुःखी कैसे हो सकता है, पालनकर्ता का अनिष्ट कैसे हो सकता है ?

आप कहेंगे कि हम तो गृहस्थी हैं। गृहस्थ को अपनी गृहस्थी चलाने में पापकर्म करने ही पड़ते हैं क्योंकि बिना धन के तो संसार की गृहस्थी के काम चल नहीं सकते। और जैन धर्म ने तो अपरिग्रह की बात कही है। अपरिग्रही गृहस्थी कैसे चला सकते हैं ? कुछ मुनि या साधु यह काम कर सकते हैं। लेकिन जब कोई भगवान् महावीर के धर्म को ठीक समझने की कोशिश करे तो उसका यह भ्रम दूर हुए बिना नहीं रहेगा।

भगवान् महावीर ने किसी भी वस्तु या विचार में आसक्ति या मूर्छा को परिग्रह माना है। धर्मपूर्वक गृहस्थी चलाने वाले को या न्यायोपार्जित धन को परिग्रह नहीं माना है और इसीलिए गृहस्थों को परिग्रह परिमाण की बात कही है। गृहस्थ के लिए परिग्रह अनिवार्य है पर परिग्रह को सभी सुखों को देनेवाला मानकर उसमें आसक्ति रखना पाप है। सर्वस्व त्यागी भी यदि किसी प्रकार की आसक्ति रखता है तो उसने बाह्य दृष्टि से सब कुछ त्याग दिया फिर भी वह अपरिग्रही नहीं है।

महावीर की प्रत्येक बात बुद्धिगम्य है और उसका पालन कल्याणप्रद। ऐसे वैज्ञानिक व बुद्धिगम्य धर्म का परिचय यदि व्यापक दृष्टि से कराया जाय तो संसार की अनेक समस्याएं सुलझकर लोग लाभान्वित हो सकते हैं। जैनियों को चाहिए कि वे इसे केवल जैनियों तक ही सीमित न रखकर उसका सम्यक् परिचय संसार को दें।
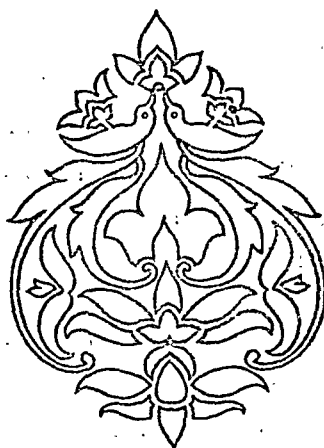
इस महान् विभूति की अवतरणा के पूर्व-चिह्न के रूप में प्रकट

सुहावनी स्वप्न पंक्ति

- मद में झूमता हाथी
- गर्जना करता हुआ सिंह
- ऊंचे कंधों वाला शुभ्र बैल
- कमल के सिंहासन पर बैठी लक्ष्मी
- दो सुगन्धित मालायें
- नक्षत्रों की सभा में बैठा चन्द्र
- उदयाचल पर अंगड़ाई भरता सूर्य
- कमल के पत्तों से ढंके दो स्वर्ण कलश
- जलाशय में क्रीड़ारत मछलियां
- स्वच्छ जल से भरपूर जलाशय
- गंभीर घोष करता समुद्र
- मणि जटित सिंहासन
- रत्नों से प्रकाशित देवों का विमान
- धरणेन्द्र का गगन चुम्बी विशाल भवन
- रत्नों की विशाल राशि
- निर्धूम अग्नि

तीर्थंकर[1]

• डॉ० नरेन्द्र भानावत, एम.ए., पी-एच. डी.,
हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय,
जयपुर।

पात्र परिचय : वाचक–पुरुष-स्वर : वाचिका–स्त्री-स्वर।

(समवेत स्वर में तीर्थंकर स्तुति—लोगस्स उज्जोवगरे, धम्मतित्थयरे जिणे।
अरिहन्ते कित्तइस्सं, चउवीसंपि केवली ।।)

वाचक – लोक में उद्योत करने वाले, धर्म तीर्थ के प्रवर्तक, राग-द्वेष के विजेता और कर्म शत्रु के नाशक इन महापुरुषों को स्तुति कर कौन कृतकृत्य नहीं होता ?

(स्तुति पाठ का स्वर—चन्देसु निम्मलयरा, आइच्चेसु अहियं पयासयरा।
सागर वर गंभीरा, सिद्धासिद्धि मम दिसन्तु ।।)

वाचिका – चन्द्र से भी अधिक निर्मल, सूर्य से भी अधिक तेजस्वी और समुद्र से भी अधिक गंभीर ये महापुरुष सबके वन्दनीय हैं।

वाचक – संसार समुद्र में द्वीप के समान शरणागत के आधार, स्वयं प्रतिबोध पाकर दूसरों को प्रतिबोध देने वाले सर्वज्ञ, सर्वदर्शी ये महापुरुष तीर्थंकर ही हैं।

वाचिका – तीर्थंकर ? (आश्चर्य से) कौन होते हैं ये तीर्थंकर ?

वाचक – अपने पूर्व भव में विशिष्ट साधना से तीर्थंकर नाम कर्म की प्रकृति बांधने वाले, धर्म चक्र प्रवर्तन के लिए तीर्थ की स्थापना करने वाले, ये तीर्थंकर असाधारण महापुरुष होते हैं।

वाचिका – तीर्थ के संस्थापक तीर्थंकर होते हैं, यह तो शाब्दिक अर्थ की ऊपरी बात हुई। सच्चे अर्थों में तीर्थ किसे कहते हैं ?

१—आकाशवाणी जयपुर द्वारा प्रसारित।

वाचक – तीर्थ वह साधन है जिसको पाकर भव्य जीव संसार-समुद्र से पार उतरते हैं। साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका ये चार तीर्थ माने गये हैं। तीर्थंकर इस प्रकार के चतुर्विध संघ की स्थापना कर धर्म प्रवर्तन का कार्य करते हैं।

वाचिका – जो लोग विभिन्न तीर्थों की यात्रा करते हैं, उन तीर्थों का इन तीर्थंकरों से कोई सम्बन्ध भी है ?

वाचक – क्यों नहीं। जिन-जिन स्थानों पर तीर्थंकरों के चरण पड़ते हैं, जहां-जहां तीर्थंकर के पंच कल्याणक होते हैं, वे सभी स्थान कालान्तर में पूजनीय बन जाते हैं। सम्मेदाशिखर, गिरनार, पालीताणा आदि ऐसे तीर्थ-स्थान हैं।

वाचिका – तीथंकर स्वयं कल्याणकारी होते हैं, वे आत्म-कल्याण भी करते हैं और लोक-कल्याण भी, फिर उनका कल्याणक महोत्सवों से क्या सम्बन्ध ?

वाचक – कल्याणक महोत्सव उनकी विशिष्ट शक्ति और गरिमा के प्रतीक हैं। जब तीर्थंकर गर्भ में आते हैं, उनकी माता को विशेष प्रकार के स्वप्न दिखाई देते हैं, रत्नों की वर्षा होती है और इन्द्रादि मिलकर उत्सव मनाते हैं। जन्म होने पर इन्द्र का आसन कांप उठता है, देवताओं के यहां स्वयमेव घंटे बजने लगते हैं।

(घण्टों की ध्वनि)

मेरू पर्वत पर ले जाकर उनका अभिषेक किया जाता है। विश्व में सर्वत्र शांति छा जाती है। नारकी जीव भी क्षण भरके लिये यातनाओं से मुक्त हो जाते हैं। इन्द्र सात बार प्रदक्षिणा कर उनकी स्तुति करता है—

नमोत्थुणं, अरिहन्ताणं, भगवन्ताणं,
आइगराणं, तित्थयराणं, संयंसंबुद्धाणं,
पुरिसुत्तमाणं, पुरिससीहाणं, पुरिसवरपुंडरी,
आणं, नमो जिणाणं, जिअमयाणं।

वाचिका – जन्म के समय तीर्थंकर साधारण बालक की तरह ही होते हैं फिर उनके लिये इतना अलौकिक प्रदर्शन ?

वाचक – यह प्रदर्शन नहीं, उनके विशिष्ट गुणों और अतिशयों के प्रति लोक श्रद्धा और आत्मोल्लास का व्यक्तिकरण है। तीर्थंकर जन्म से ही मतिज्ञान, श्रुतिज्ञान और अवधिज्ञान के धारक होते हैं। उनका शरीर स्वस्थ एवं बलिष्ठ होता है। वे जब सांस लेते हैं तब कमल की गन्ध आती है।

वाचिका – इससे लगता है वे जन्म से ही असाधारण होते हैं।

वाचक – पूर्व जन्म के पुण्योदय से उनमें असाधारण क्षमता तो होती ही है, पर वे क्षत्रिय वंश में उत्पन्न होते हैं, जिनका उत्तरदायित्व क्षतों का त्राण करना होता है। वैभव विलास के सभी उपकरण उन्हें सुलभ होते हैं फिर भी सांसारिक सुख के प्रति उनका कोई आकर्षण नहीं होता, वे विवाह भी करते हैं पर निर्वेद का कारण उपस्थित होते ही प्रवज्या अंगीकृत कर लेते हैं।

वाचिका – विवाहित पत्नी के प्यार को ठुकराकर उसकी सुनहली कल्पनाओं पर तुषारापात करना कितना जघन्य अपराध है? जो अपने परिवार को पूरी तरह नहीं अपना सकते वे संसार को क्या अपना बनायेंगे?

वाचक – तीर्थंकर की दृष्टि वड़ी उदार और व्यापक होती है। वे सम्पूर्ण विश्व को अपना परिवार समझते हैं। उनका हृदय संवेदनशील होता है, वे दूसरों के दुःख को अपना बनाकर उसे दूर करने का सतत् प्रयत्न करते हैं। प्रवज्या उन्हें अपने स्वार्थ के घेरे से वाहर निकालकर परमार्थ की ओर उन्मुख करती है।

वाचिका – इस वैराग्य भावना का कोई वाह्य कारण भी होता है?

वाचक – होता है, पर यह बाह्य कारण जीवन को तभी वदल सकता है जब उसमें पहले के संस्कार विद्यमान हों। प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव ने अपने राज-दरबार में नीलांजना अप्सरा को नाचते हुए देखा (नृत्य की आवाज) और देखा कि नाचते-नाचते ही वह इस नश्वर संसार को छोड़ चली गई है। (मृत्यु का सन्नाटा) इस क्षणभंगुरता के बोध से ऋषभ का चिंतन प्रवाह वैराग्य की ओर अभिमुख हुआ। दूल्हे के वेश में सजे बाइसवें तीर्थंकर नेमिनाथ ने तोरण द्वार पर दीन पशु-पक्षियों की करुण कातर पुकार सुनी।

(कातर ध्वनि)

विवाह के प्रीतिभोज के लिए उन निरीह पशुओं की हिंसा का यह करुण दृश्य उनसे न देखा गया और वे वारात लेकर उल्टे पांव लौट पड़े।

वाचिका – तीर्थंकर क्या एक से अधिक भी होते हैं?

वाचक – आगमिक मान्यता के अनुसार प्रत्येक युग में २४ तीर्थंकर होते हैं। वर्तमान युग के २४ तीर्थंकरों में प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव हैं और अन्तिम तीर्थंकर महावीर स्वामी।

वाचिका – ऋषभदेव को प्रथम तीर्थंकर और युगादिदेव क्यों माना गया है ?

वाचक – इसलिये कि उन्होंने मानव-सभ्यता का सूत्रपात किया। पेड़-पौधों पर बसर करने वाले लोगों को पुरुषार्थ का पाठ पढ़ाकर कृषि कर्म करना सिखाया। अक्षर और लिपि का बोध कराकर आत्मा की अनन्त ज्ञान शक्ति का परिचय दिया, अन्याय और अत्याचार के खिलाफ लड़ना सिखाया। अन्धकार में भटकती हुई मानवता को तीर्थ की स्थापना कर धर्म का प्रकाश दिया। इसीलिए वे आदिनाथ वन्दनीय हैं, पूजनीय हैं, स्तुति करने योग्य हैं।

(स्तुति पाठः भक्तामरः प्रणतमौलि मणि प्रभाणाम्,
मुद्योतकं दलित पाप तमो वितानाम्।
सम्यक् प्रणम्य जिन पाद युगं युगादा,
वालंवने भवजले पततां जनानाम्।)

वाचिका – ऋषभ और महावीर के बीच जो बाईस तीर्थंकर हो गये हैं उनकी कोई विशिष्ट पहचान भी है ?

वाचक – आत्म-गुणों की दृष्टि से सभी तीर्थंकर समान होते हैं, सभी तीर्थ की स्थापना कर धर्म का प्रचार करते हैं। हां प्रत्येक तीर्थंकर अपने विशिष्ट चिह्न से पहचाना जाता है। ऋषभदेव की मां मरुदेवी ने प्रथम स्वप्न वृषभ का देखा, वालक ऋषभ के वक्षस्थल पर भी वृषभ का ही लांछन था, इसीलिये वृषभ उनका चिह्न मान लिया गया। भगवान् महावीर अपने किसी भव में सिंह थे। सिंह की तरह अधर्म और अनाचार के विरुद्ध दहाड़ने के कारण सिंह ही उनका चिह्न मान लिया गया। प्रत्येक तीर्थंकर का अपना अलग-अलग चिह्न है।

वाचिका – यह तो पहचान का वाह्य लक्षण है।

वाचक – पहचान का आन्तरिक लक्षण तो कोई है नहीं। सभी तीर्थंकर अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त शक्ति और अनन्त सुख के धनी होते हैं। हां, वीचके बाइस तीर्थंकर चार महाव्रत रूप धर्म की प्ररूपणा करते हैं, अहिंसा, सत्य, अस्तेय और अपरिग्रह का उपदेश देते हैं। उनके साधु सरल-स्वभावी और बुद्धिमान होते हैं। इसके विपरीत प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर पांच महाव्रत रूप धर्म की देशना करते हैं। वे ब्रह्मचर्य व्रत की अलग से महत्ता प्रतिपादित करते हैं। क्योंकि पहले तीर्थंकर के साधु ऋजुजड़ होने के कारण तत्त्व को पूरी तरह हृदयंगम नहीं कर

पाते हैं और अन्तिम तीर्थंकर के साधु वक्रजड़ होने के कारण धर्मानुरूप आचरण नहीं कर पाते हैं। इसीलिए वर्द्धमान महावीर ने २३वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ के चार व्रतों के स्थान पर पांच व्रतों की प्रतिष्ठा की।

वाचिका – महावीर को वर्धमान क्यों कहा जाता है ?

वाचक – महावीर का जन्म नाम वर्धमान ही है। जब ये माता के गर्भ में आये तब चारों ओर सुख-समृद्धि की वृद्धि हुई। इनके जन्म लेते ही परिवार में अनन्त वैभव बढ़ा। इन्हीं लक्षणों के आधार पर ज्योतिषियों ने इनका नाम वर्धमान रखा।

वाचिका – तो फिर महावीर नाम से ये लोक प्रसिद्ध क्यों हुए ?

वाचक – इस नाम का सम्बन्ध उनकी बचपन की एक घटना से है। एक बार ये अपने समवयस्क बालकों के साथ एक उद्यान में खेल रहे थे। अचानक एक भयंकर सांप आया। सारे बालक साथी उसे देखकर डर गये। इधर-उधर भाग निकले पर वर्धमान तनिक भी विचलित न हुए। वे निर्भय होकर खिलौने की भांति उससे खेलने लगे। इसी घटना के कारण वे लोक में वीर अथवा महावीर नाम से प्रसिद्ध हुए।

वाचिका – क्या इनके और भी नाम हैं ?

वाचक – यों तो इनके अनेक नाम हैं, पर एक प्रसिद्ध नाम सन्मति भी है। इस नाम का सम्बन्ध भी उनकी बालपन की एक घटना से है। एक बार संजय और विजय नाम के दो महर्षियों को सूक्ष्म पदार्थों में कुछ शंकायें उत्पन्न हुई। वे कुमार वर्द्धमान के पास आये और उन्हें देखते ही उनकी शंकाओं का समाधान हो गया। उसी दिन से लोग उन्हें सन्मति कहने लगे।

वाचिका – और ज्ञान प्राप्ति के लिए उन्हें कोई साधना नहीं करनी पड़ी ?

वाचक – उन्हें कठोर साधना करनी पड़ी। तीस वर्ष की भरी जवानी में राजसी वैभव को लात मार कर वे दीक्षित हुए। दीक्षा लेने के बाद बारह वर्षों तक भयानक जंगलों में घूमे, भूखे रहे, प्यासे रहे, कभी आराम की नींद न ली, सर्दी गर्मी और वर्षा के उपसर्ग भी उन्होंने समभाव पूर्वक सहन किये।

वाचिका – वे थे तो बड़े तेजस्वी, उनकी किसी ने सहायता नहीं की ?

वाचक – वे किसी की सहायता पर निर्भर नहीं थे। पूर्ण पुरुषार्थी थे। अपने

ध्यान में निरन्तर लीन रहा करते थे। एक ग्वाले ने अपने बैलों को न पाकर इन्हें चोर और धूर्त समझा, इनके कानों में कीले ठोके, पर ये सब सहन करते रहे।

वाचिका – जन्मादि उत्सव मनाने वाले इन्द्रादि देव उस समय कहां चले गये थे ?

वाचक – वे महावीर को सहायता देने के लिए आये थे, पर महावीर ने उनकी सहायता लेने से स्पष्ट इन्कार कर किया। वे अकेले ही अपने कर्म रूपी शत्रुओं से मुकावला करते रहे। उनको तपसे डिगाने के लिए कठोर यंत्रणायें दी गई पर वे अपनी साधना से किंचित भी विचलित न हुए।

वाचिका – चण्डकौशिक सर्प को भी उन्होंने वश में किया था ?

वाचक – वश में नहीं किया, उसके सम्पूर्ण जीवन क्रम को बदल दिया। वह अपनी विष दृष्टि छोड़ उनके चरणों में लेट गया। उनके तेज के आगे अपने विष को प्रभाव रहित जानकर उन्हीं के चरणों में क्षमा की मूर्ति वन गया।

वाचिका – सांप जैसे विषैले प्राणी को आत्मवोध देने वाले महावीर धन्य हैं।

वाचक – उन्होंने विषैले जीव-जन्तुओं को ही वोध नहीं दिया। अपनी उग्र तपस्या और कठोर साधना के फलस्वरूप आत्मा की सम्पूर्ण कालिमाओं को धोकर ज्ञान के दिव्य प्रकाश को प्राप्त किया। उन्हें केवलज्ञान हुआ, वे सव कुछ जानने और सव कुछ देखने लगे। देवताओं ने मिलकर ज्ञान-कल्याणक उत्सव मनाया और समवसरण की रचना की।

वाचिका – समवसरण किसे कहते हैं ?

वाचक – तीर्थंकर जहां उपस्थित होकर के अपनी धर्म देशना करते हैं, उस स्थान को समवसरण कहते हैं। इस सभा में सभी जाति और वर्ग के लोग. क्या स्त्री, क्या पुरुष, क्या धनी, क्या निर्धन, विना रोकटोक के अवाध रूप से प्रवचन सुनने के लिए आया करते हैं।

वाचिका – तीर्थंकर की देशना एवं प्रवचन किस भाषा में होते हैं ?

वाचक – लोक भाषा में। महावीर ने अपनी देशना अर्द्ध मागधी में दी जो कि तत्कालीन लोक-भाषा का एक प्रकार है।

वाचिका – उन्होंने लोक-कल्याण के लिए क्या व्यवस्था दी ?

वाचक – उन्होंने कहा सभी जीव जीना चाहते हैं, मरना कोई नहीं चाहता।

इसीलिए तुम अपने आपको जितना प्यार करना चाहते हो, उतना ही प्यार दूसरे जीवों को करो। आवश्यकता से अधिक संग्रह मत करो। अधिक संग्रह करना दूसरों के हक को छीनना है।

अप्पा कत्ता विकत्ताय, दुहाराय सुहाणय।
अप्पा कामदुहा धेणु, अप्पामे नन्दणं वणं ।।

हम ही अपना निर्माण और विकास करने वाले हैं, ईश्वर नहीं। उनके उपदेश का सार संक्षेप में सर्वजाति समभाव, सर्वधर्म समभाव और सर्वजीव समभाव है।

वाचिका – अपने और लोक के कल्याण के लिए धर्म की व्यवस्था देने वाले ये अरिहन्त तीर्थंकर सिद्ध भगवान् और मुनि महात्मा प्राणीमात्र के लिए मंगलकारी हैं। लोक में उत्तम हैं और संसारी जीवों को शरण देने वाले हैं।

उनके चरणों में कोटि-कोटि प्रणाम—

णमो अरिहन्ताणं, णमो सिद्धाणं,
णमो आयरियाणं, णमो उवज्झायाणं,
णमो लोए सव्वसाहूणं।
चतारि मंगलम्, अरिहन्ता मंगलम्,
सिद्धा मंगलम्, साहू मंगलम्,
केवलि पन्नतोधम्मो मंगलम्।

(आकाशवाणी जयपुर के सौजन्य से)

भगवान् महावीर
का
परिवार

नाम—वर्धमान
पिता का नाम—सिद्धार्थ
माता का नाम—त्रिशला (विदेहदत्ता)
जन्मस्थान—क्षत्रिय कुंड
जन्मतिथि—चैत्र शुक्ला १३, ई० पू० ५९९
देहवर्ण—तप्त स्वर्णतुल्य
देहमान—सात हाथ (रत्नी)
लक्षण—सिंह
गोत्र—काश्यप
मातामह—चेटक
चाचा—सुपार्श्व
जेष्ठ भ्राता—नन्दोवर्धन
जेष्ठ भगिनी—सुदर्शना
पत्नी—यशोमती
पुत्री—प्रियदर्शना
भानेज और जामाता—जमालि
दौहित्री—शेषवती
माता-पिता का स्वर्गवास—ई० पू० ५७१

भगवान् महावीर का अपरिग्रह सिद्धान्त और उसकी उपादेयता

• डॉ० सागरमल जैन, भोपाल

/

संग्रह वृत्ति का उद्भव एवं विकास :

अपरिग्रह का प्रश्न सम्पत्ति के स्वामित्व से जुड़ा हुआ है और सम्पत्ति के स्वामित्व की धारणा का विकास मानव जाति के विकास का सहगामी माना जाता है। मानव इस पृथ्वी पर कैसे और कब अस्तित्व में आया, यह प्रश्न आज भी वैज्ञानिकों के लिये एक गूढ़ पहेली बना हुआ है। विकासवादी दार्शनिक मानव-सृष्टि को विकास की प्रक्रिया का ही एक अंग मानते हैं और अमीबा जैसे एक कोषीय प्राणी से प्राणियों की विभिन्न जातियों की विकास प्रक्रिया के माध्यम से मनुष्य की उत्पत्ति की व्याख्या करते हैं। जबकि जैन दर्शन सृष्टि को आरोह और अवरोह की एक सतत् प्रक्रिया (Continuing Process) बताता है। और मानव जाति के अस्तित्व को भी इस आरोह और अवरोह क्रम के सन्दर्भ में ही विवेचित करता है। फिर भी नृतत्व विज्ञान, विकासवादी दर्शन और जैन दर्शन इस सम्बन्ध में एक मत हैं कि मानव की वर्तमान सभ्यता का विकास उसके प्राकृतिक जीवन से हुआ है। एक समय था जबकि मनुष्य विशुद्ध रूप से एक प्राकृतिक जीवन जीता था और प्रकृति भी इतनी समृद्ध थी कि उसे-अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए न तो कोई विशिष्ट श्रम करना होता था और न संग्रह ही। अतः उस युग में परिग्रह का विचार ही उत्पन्न नहीं हुआ था क्योंकि उस युग में न तो सम्पत्ति ही थी और न उसके स्वामित्व का विचार ही था। मानव उदार प्रकृति की गोद में पलता और पोषित होता था। जैन परम्परा में इसे यौगलिक युग (अकर्म-युग) कहा जाता है। साम्यवादी विचारधारा की दृष्टि से यह प्रारम्भिक साम्यवाद (Primitive Socialism) की अवस्था थी। सामान्यतया इस युग में मानव की आकांक्षायें इतनी बढ़ी चढ़ी नहीं थीं और इस दृष्टि से वह सुखी और सन्तुष्ट था।

किन्तु धीरे-धीरे एक ओर जनसंख्या बढ़ी तथा दूसरी ओर प्रकृति की समृद्धता कम होने लगी; अतः जीवन जीना जटिल होने लगा, यहीं से श्रम की

उद्भावना हुई। जैन परम्परा के अनुसार ऐसी अवस्था में सर्वप्रथम भगवान् ऋषभ-देव ने मानव जाति को कृषि की शिक्षा दी। कृषि में जहां एक ओर मानव श्रम लगने लगा वहीं दूसरी ओर उस श्रम के परिणामस्वरूप उत्पन्न अन्न सामग्री के संचयन और स्वामित्व का प्रश्न भी उठ खड़ा हुआ। वस्तुतः कृषि से उत्पन्न सामग्री ऐसी नहीं, जो वर्ष में हर समय सुलभ हो सके, केवल वर्षा पर आश्रित वह कृषि वर्ष में एक ही बार अपनी उपज दे देती थी और इसलिये सम्पूर्ण वर्ष भर के लिये अन्न का संचयन आवश्यक था। जीवन रक्षण के लिये संचयन की इस वृत्ति से परिग्रह का विचार विकसित हुआ है। मनुष्य की यह संग्रह वृत्ति कृषि-उत्पादन के संचयन और स्वामित्व तक ही सीमित नहीं रही अपितु कृषि-भूमि और कृषि में सहयोगी पशुओं के स्वामित्व का प्रश्न भी सामने आया। हो सकता है कि कुछ समय तक मानव ने समूह के सामूहिक स्वामित्व की धारणा के आधार पर कार्य चलाया हो। किन्तु संचयन और स्वामित्व की वृत्ति के परिणामस्वरूप स्वार्थ का उद्भव स्वभाविक ही था। मानव की इस स्वामित्व की भूख और स्वार्थ-लिप्सा ने सामन्तवाद को जन्म दिया। राज्य एवं उनके स्वामी राजा महाराजा और सामन्त अस्तित्व में आये और परिणामस्वरूप मानव जाति स्वामी और दास के वर्ग में विभाजित हो गई। मानव के शोषण-पीड़न और अत्याचार के एक नये युग का सूत्रपात हुआ। भगवान् ऋषभ के द्वारा प्रवर्तित वही कृषि-क्रांति जो मानव जाति की सुख-सुविधा और शांति का संदेश लेकर आयी थी, भगवान् महावीर के युग तक आते-आते स्वार्थ-लिप्सा से युक्त हाथों में पहुंचकर न केवल मानव जाति में दास और स्वामी का तथा शोषित एवं शोषक का वर्ग भेद खड़ा कर रही थी अपितु मानव समाज के एक बहुत बड़े भाग के संताप और पीड़ा का कारण भी बन गई थी।

महावीर के युग की सामाजिक और आर्थिक स्थिति :

भगवान् महावीर के युग में तत्कालीन समाज व्यवस्था कैसी थी? उसमें आर्थिक वैषम्य जन्म द्वेष-ईर्ष्या तथा शोषण और पीड़न आदि विद्यमान थे या नहीं? यह महत्त्वपूर्ण प्रश्न कई विचारकों के सम्मुख हैं। तत्कालीन समाज व्यवस्था का जो चित्र हमें जैन आगमों में विद्यमान है, उससे यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि उस युग में भी आर्थिक विषमता और तद्जन्य द्वेष, ईर्ष्या आदि सब कुछ थी। तत्कालीन समाज व्यवस्था का जो शब्द चित्र लगभग २५०० वर्ष के पश्चात् भी उपलब्ध है, उससे यह कहा जा सकता है कि उस समय समाज के सदस्यों में संग्रह वृत्ति भी थी। इस कारण यहां एक व्यक्ति बहुत अधिक धनी था वहां दूसरा व्यक्ति अत्यधिक अभाव ग्रस्त था। बड़े-बड़े सामन्त और सेठ अपने यहां नौकर-चाकर रखते थे, केवल यही नहीं अपितु दास प्रथा तक विद्यमान थी। डॉ० जगदीशचन्द्र जैन ने अपनी पुस्तक 'जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज' में 'ऋण दास', 'दुर्भिक्ष दास' आदि का उल्लेख करते हुए यह भी बताया है कि इस

प्रकार के दासों की मुक्ति किस प्रकार हुआ करती थी। तात्पर्य यह है कि तत्कालीन समाज व्यवस्था में अर्थ के सद्भाव तथा अभाव (Have and Have not) की समस्या थी। निश्चित रूप में इस कारण विषमता, द्वेष, ईर्ष्या सब हुआ करती होगी। यदि हम जैन आगम 'उपासक दशांग' का अवलोकन करें तो हमें यह स्पष्ट हो जायेगा कि कुछ लोगों के पास कितनी प्रचुर मात्रा में सम्पत्ति थी। केवल यही नहीं, अपितु धन के उत्पादन के मुख्य साधन (भूमि, श्रम, पूंजी, प्रबन्ध) पर उनका अधिकार (चाहे एकाधिकार न हो) था। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि उस युग में एक ओर समाज के कुछ सदस्यों के पास विपुल सम्पत्ति तथा अर्थोपार्जन के प्रमुख साधन विपुल मात्रा में थे तो दूसरी ओर कुछ लोग अभाव और गरीबी का जीवन जी रहे थे। समाज में उपस्थित इस आर्थिक वैषम्य के मूल कारण की खोज आवश्यक थी और भगवान् महावीर ने इसकी खोज की और इस मूल कारण को मानव की तृष्णा माना।

संग्रह वृत्ति या परिग्रह का मूल कारण तृष्णा :

भगवान् महावीर ने उत्तराध्ययन सूत्र में संसार के सभी दुःखों का मूल कारण तृष्णा की वृत्ति को माना है। वे कहते हैं कि जिसकी तृष्णा समाप्त हो जाती है उसके दुःख भी समाप्त हो जाते हैं।[१] वस्तुतः तृष्णा वृत्ति का ही दूसरा नाम लोभ है। दशवैकालिक सूत्र में लोभ को समस्त सद्गुणों का विनाशक माना गया है और इसी लोभ से संग्रह वृत्ति का उदय होता है। जैन विचारधारा के अनुसार तृष्णा एक ऐसी दुष्पुर खाई है जिसका कभी अन्त नहीं आता। उत्तराध्ययन सूत्र में इसी बात को स्पष्ट करते हुए भगवान् महावीर ने कहा है कि यदि सोने और चांदी के कैलाश समान असंख्य पर्वत भी खड़े कर दिये जाएं तो भी यह तृष्णा शान्त नहीं हो सकती क्योंकि धन चाहे कितना भी हो वह सीमित है और तृष्णा अनन्त (असीम) है। अतः सीमित साधनों से असीम तृष्णा की पूर्ति नहीं की जा सकती।[२]

वस्तुतः तृष्णा के कारण संग्रह वृत्ति का उदय होता है और यह संग्रह वृत्ति आसक्ति के रूप में बदल जाती है और यही आसक्ति परिग्रह का मूल है। दशवैकालिक सूत्र के अनुसार आसक्ति ही परिग्रह है।[३] भारतीय ऋषियों के द्वारा अनुभूत यह सत्य आज भी उतना ही यथार्थ है जितना की उस युग में था जबकि इसका कथन किया गया होगा। न केवल जैन दर्शन में अपितु बौद्ध और वैदिक दर्शनों में भी तृष्णा को समस्त सामाजिक वैषम्य और वैयक्तिक दुःखों का मूल

---

१. उत्तराध्ययन ३२/८
२. उत्तराध्ययन ९/४८
३. दशवै० ६/२१

कारण माना गया है। भगवान् बुद्ध का भी कहना है कि यह तृष्णा दुष्पुर है और जब तक तृष्णा नष्ट नहीं होती तब तक दुःख भी नष्ट नहीं होता। धम्मपद में वे कहते हैं कि जिसे यह विषैली नीच तृष्णा घेर लेती है उसके दुःख उसी प्रकार बढ़ते हैं जिस प्रकार खेतों में वीरण घास बढ़ती है।[1] भगवान् बुद्ध ने इस तृष्णा को तीन प्रकार का माना है—(१) भव तृष्णा, (२) विभव तृष्णा और (३) काम तृष्णा। भव तृष्णा अस्तित्व या बने रहने की तृष्णा है, यह रागस्थानीय है। विभव तृष्णा समाप्त हो जाने या नष्ट हो जाने की तृष्णा है, यह द्वेष स्थानीय है। काम तृष्णा भोगों की उपलब्धि की तृष्णा है और यही परिग्रह का मूल है। गीता में भी आसक्ति को ही जागतिक दुःखों का मूल कारण माना गया है। गीता में यह स्पष्ट कहा गया है कि आसक्ति का तत्त्व ही व्यक्ति को संग्रह और भोगवासना के लिये प्रेरित करता है। गीता यह भी स्पष्ट रूप से कहती है कि आसक्ति में बंधा हुआ व्यक्ति काम भोगों की पूर्ति के लिये अन्यायपूर्वक संग्रह करता है। इस प्रकार सम्पूर्ण भारतीय चिन्तन संग्रह वृत्ति के मूल कारण के रूप में तृष्णा को स्वीकार करता है। सन्त सुन्दरदासजी ने इस तथ्य का एक सुन्दर चित्र खींचा है। वे बताते हैं कि किस प्रकार यह तृष्णा संग्रह की उद्दाम वृत्तियों को जन्म दे देती है। उन्होंने लिखा है कि :—

जो दस वीस पचास भये, शत होइ हजार तु लाख मगेगी।
कोटि अरब्ब खरब्ब असंख्य, धरापति होन की चाह जगेगी।
स्वर्ग पताल को राज करो, तिसना अधिकी अति आग लगेगी।
सुन्दर एक संतोष विना, शठ तेरी तो भूख कवहूं न भगेगी।

पाश्चात्य विचारक महात्मा टालस्टाय ने भी (How much land does a man need) नामक कहानी में एक ऐसा ही सुन्दर चित्र खींचा है। कहानी का सारांश यह है कि कथानायक भूमि की असीम तृष्णा के पीछे अपने जीवन को समाप्त कर देता है और उसके द्वारा उपलब्ध किये गये विस्तृत भू-भाग में केवल उसके शव को दफनाने जितना भू-भाग ही उसके उपयोग में आता है।

इस प्रकार हम देखते हैं मानव में संग्रह वृत्ति या परिग्रह की धारणा का विकास उसकी तृष्णा के कारण हुआ है। मनुष्य के अन्दर रही हुई तृष्णा या आसक्ति मुख्यतः दो रूपों में प्रकट होती है—(१) संग्रह भावना और (२) भोग भावना। संग्रह भावना और भोग भावना से प्रेरित होकर ही मनुष्य दूसरे व्यक्तियों के अधिकार की वस्तुओं का अपहरण करता है। इस प्रकार आसक्ति का बाह्य प्रकटन निम्न तीन रूपों में होता है—(१) अपहरण (शोषण), (२) भोग और (३) संग्रह।

---

१. धम्मपद ३३५

संग्रह वृत्ति एवं परिग्रह के कारण उत्पन्न समस्याओं के निराकरण के उपाय :

भगवान् महावीर ने संग्रह वृत्ति के कारण उत्पन्न समस्याओं के समाधान की दिशा में प्रयास करते हुए यह बताया कि संग्रह वृत्ति पाप है। यदि मनुष्य आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का संग्रह करता है तो वह समाज में अपवित्रता का सूत्रपात करता है। संग्रह फिर चाहे धन का हो या अन्य किसी वस्तु का वह समाज के अन्य सदस्यों को उनके लाभ से वंचित कर देता है। परिग्रह या संग्रह वृत्ति एक प्रकार की सामाजिक हिंसा है। जैन आचार्यों की दृष्टि में समग्र परिग्रह हिंसा से प्रत्युत्पन्न हैं। व्यक्ति संग्रह के द्वारा दूसरों के हितों का हनन करता है और इस रूप में संग्रह या परिग्रह हिंसा का ही एक रूप बन जाता है। अहिंसा अनासक्ति के सिद्धान्त को जीवन में उतारने के लिये जैन आचार्यों ने यह आवश्यक माना कि व्यक्ति बाह्य परिग्रह का भी विसर्जन करें। परिग्रह त्याग अनासक्त दृष्टि का बाह्य जीवन में दिया गया प्रमाण है। एक ओर विपुल संग्रह और दूसरी ओर अनासक्ति का सिद्धान्त इन दोनों में कोई मेल नहीं हो सकता। यदि मन में अनासक्ति की भावना का उदय है तो उसका बाह्य व्यवहार में अनिवार्य रूप से प्रकटन होना चाहिये। अनासक्ति की धारणा को व्यावहारिक रूप देने के लिये गृहस्थ जीवन में परिग्रह मर्यादा और श्रमण जीवन में समग्र परिग्रह के त्याग का निर्देश दिया गया है। दिगम्बर जैन मुनि के अपरिग्रही जीवन का आदर्श अनासक्त दृष्टि का एक जीवित प्रमाण है। यद्यपि यह संभव है कि अपरिग्रही होते हुए भी व्यक्ति के मन में आसक्ति का तत्त्व रह सकता है लेकिन इस आधार पर यह मानना कि विपुल संग्रह को रखते हुए भी अनासक्त वृत्ति का पूरी तरह निर्वाह हो सकता है, यह समुचित नहीं है।

भगवान् महावीर ने आर्थिक वैषम्य भोग-वृत्ति और शोषण की समाप्ति के लिये मानव जाति को अपरिग्रह का सन्देश दिया। उन्होंनें बताया कि इच्छा आकाश के समान अनन्त होती है (इच्छा हु आगास समा अणंतया) और यदि व्यक्ति अपनी इच्छाओं पर नियंत्रण नहीं रखे तो वह शोषक बन जाता है। अतः भगवान् महावीर ने इच्छाओं के नियंत्रण पर बल दिया। जैन दर्शन में जिस अपरिग्रह सिद्धान्त को प्रस्तुत किया गया है उसका एक नाम 'इच्छा परिमाण व्रत' भी है। भगवान् महावीर ने मानव की संग्रह वृत्ति को अपरिग्रह व्रत एवं इच्छा परिमाण व्रत के द्वारा नियंत्रित करने का उपदेश दिया है। साथ ही उसकी भोग भावना और शोषण की वृत्ति के नियंत्रण के लिये ब्रह्मचर्य, उपभोग, परिभोग, परिमाण व्रत तथा अस्तेय व्रत का विधान किया गया है। मनुष्य अपनी संग्रह वृत्ति को इच्छा परिमाण व्रत के द्वारा या परिग्रह परिमाण व्रत के द्वारा नियंत्रित करे। इसी प्रकार अपनी भोग-वृत्ति एवं वासनाओं को उपभोग, परिभोग, परिमाण व्रत एवं ब्रह्मचर्य व्रत के द्वारा

नियंत्रित करे। समाज को शोषण से बचाने के लिये ग्रस्तेय व्रत ग्रौर ग्रहिंसा व्रत का विधान किया गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि महावीर ने मानव जाति को ग्रार्थिक वैषम्य ग्रौर तद्जनित परिणामों से बचाने के लिये एक महत्त्वपूर्ण दृष्टि प्रदान की है। मात्र इतना ही नहीं महावीर ने उन लोगों को जिनके पास संग्रह था दान का उपदेश भी दिया। ग्रभाव पीड़ित समाज के सदस्यों के प्रति व्यक्ति के दायित्व को स्पष्ट करते हुए, महावीर ने श्रावक के एक ग्रावश्यक कर्तव्यों में दान का विधान भी किया है। यद्यपि हमें यह ध्यान रखना चाहिये कि जैन दर्शन ग्रौर ग्रन्य भारतीय दर्शनों में दान ग्रभावग्रस्त कोई ग्रनुग्रह नहीं है ग्रपितु उसका ग्रधिकार है। दान के लिये सम-विभाग शब्द का प्रयोग किया गया है। भगवान् महावीर ने स्पष्ट रूप से यह कहा है कि जो व्यक्ति समविभाग ग्रौर समवितरण नहीं करता उसकी मुक्ति संभव नहीं है। ऐसा व्यक्ति पापी ही है।[1] समविभाग ग्रौर समवितरण सामाजिक एवं ग्राध्यात्मिक विकास के ग्रनिवार्य ग्रंग माने गये हैं। जब तक जीवन में सम-विभाग ग्रौर समवितरण की वृत्ति नहीं ग्राती है ग्रौर ग्रपने संग्रह का विसर्जन नहीं किया जाता तब तक ग्राध्यात्मिक जीवन की उपलब्धि भी संभव नहीं होती।

---

१. उत्तराध्ययन सूत्र १७/११, प्रश्न व्याकरण २/३
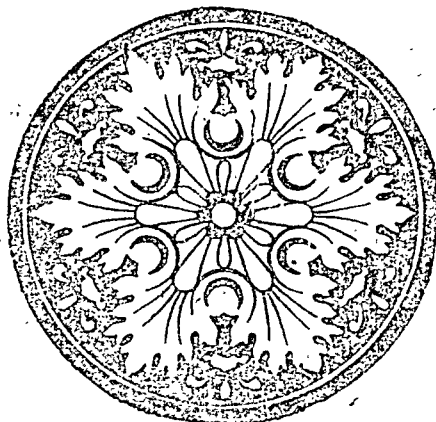
भगवान् महावीर
की
साधकावस्था

दीक्षा तिथि—मंगसिर कृष्णा १० ई० पू० ५६९

दीक्षा विधि—पापाचरण का परित्याग

दीक्षा गुरु—कोई नहीं अर्थात् स्वयंबुद्ध

साधना—ध्यान और मौनयुत तप

तपश्चर्या—दीर्घकालीन और निर्जल

प्रथम तप—वेला

प्रथम पारणक दाता—बहुल ब्राह्मण

प्रथम पारणक स्थल—कोल्लाग सन्निवेश

कुल पारणक—३४९

कुल साधना—साढ़े बारह वर्ष

निद्राकाल—मात्र दो घड़ी (साढ़े बारह वर्षों में)

विहार—आर्य एवं अनार्य भूमि

अकृत प्राप्त प्रथम शिष्य—गोशालक

साधना में उपसर्गकर्ता—गोपाल, कटपूतना, शूलपाणि, संगम, चंडकौशिक

भगवान् महावीर
की
तपश्चर्या

षट्मासी तप	१
पांच दिन कम षट्मासी तप	१
चातुर्मासी तप	६
त्रिमासी तप	२
सार्ध द्विमासी तप	२
द्विमासी तप	६
सार्धेकमासी तप	२
एकमासी तप	१२
अर्धमासी तप	७२
भद्र प्रतिमा तप, दिवस	२
महाभद्र प्रतिमा तप, दिवस	४
सर्वतोभद्र प्रतिमा तप, दिवस	१०
त्रिदिवसीय तप (अट्ठम)	१२
द्विदिवसीय तप (छट्ठ)	२२६
दीक्षा दिन का तप दिवस	१

[कुल बारह वर्ष १३ पक्ष की साधकावस्था में ३४६ दिन पारणक के हुए और बाकी के दिन निर्जल तपस्या के हुए ।]

❖❖

भगवान् महावीर
के
दस स्वप्न

१ तालपिशाच को मारा—मोह को मारोगे

२ श्वेत पक्षी देखा—धर्मध्यान ध्याओगे

३ चित्र कोकिल देखा—द्वादशाङ्गी की प्ररूपणा करोगे

४ गोकुल देखा—चतुर्विध संघ की स्थापना करोगे

५ समुद्र को तैरा—संसार को तैरोगे

६ उदीयमान सूर्य देखा—केवलज्ञान पाओगे

७ आंतों से वेष्टित मानुषोत्तर देखा—कीर्ति फैलेगी

८ मेरूचूलिका पर स्वयं को आरूढ़ पाया—सिंहासनोपविष्ट धर्म देशना दोगे

९ देवालंकृत पद्मसर देखा—देवसेवित बनोगे

१० माला युग्म देखा—द्विविध धर्म कहूँगा

[उत्पल श्रावक ने नवस्वप्नों का अर्थ बतलाया और दसवें स्वप्न का अर्थ स्वयं भगवान् ने कहा।]
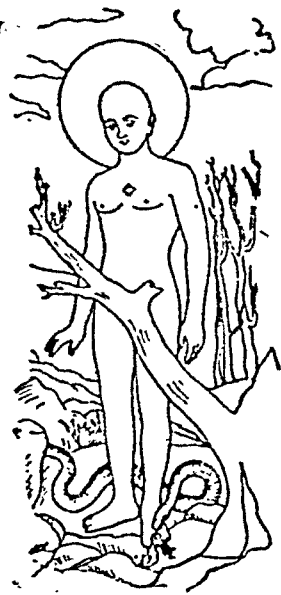
क्रान्तिकारी महावीर

• चन्दनमल 'चांद'

गतिशीलता एवं परिवर्तन का नाम ही दुनिया है। हर क्षण परिवर्तन का चक्र अनवरत चलता रहता है। यह सही है कि कुछ परिवर्तन तुरन्त नजर आते हैं और कुछ कालान्तर में स्पष्ट होते हैं। विश्व के इतिहास में जब भी कोई महान् परिवर्तन हुआ उसके पीछे विचारों की क्रान्ति अवश्य रही है। क्रान्ति और परिवर्तन में शाब्दिक अन्तर भले ही हो किन्तु मूल तत्त्व एक ही है। क्रान्ति का अर्थ ही है नूतनता, गतिशीलता और परिवर्तन। भ्रमवश क्रान्ति का अर्थ केवल राजनैतिक सीमा में ही आवद्ध कर दिया गया है अथवा हिंसा से इसे जोड़ दिया गया है। वस्तुतः क्रान्ति का यह अर्थ नहीं है। क्रान्ति में आचार और विचार दोनों पक्षों का समन्वय आवश्यक होता है। इसके साथ ही वातावरण, परिस्थितियां और परिवेश भी क्रान्ति की पृष्ठ भूमि होती है।

भगवान् महावीर वस्तुतः क्रान्तिकारी थे। २५०० वर्षों पूर्व भारत की धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक स्थितियों के बीच भगवान् महावीर ने अभिनव क्रान्ति का शंखनाद किया। समाज जातिवाद के चंगुल में फंसा था। मनुष्य जन्म से ही उच्च और नीच माना जाता था। ब्राह्मण और शूद्र की खाई बहुत गहरी थी। महावीर ने क्रान्ति का उद्घोष करते हुये कहा—'मनुष्य जन्म से नहीं कर्म से महान् बनता है।' महावीर ने केवल कहा ही नहीं बल्कि अपने धर्म-संघ में हरिकेशी जैसे चाण्डाल को मुनि का महान् पद दिया। अर्जुन माली जैसे डाकू को पवित्र किया। महावीर ने मानव की एकता और समानता के आधार पर समता का सिद्धान्त प्रतिष्ठित किया।

नारी जाति को महावीर ने पुरुषों के समकक्ष मानते हुये जागरण का एवं साधना के क्षेत्र में विकास का अनुपम अवसर दिया। दासियों की तरह बिकी हुई

चन्दनबाला को ३६ हजार साध्वियों की प्रमुखा बनाकर महावीर ने साधना के क्षेत्र में नर-नारी के भेद को मिटाया।

मेरी दृष्टि में महावीर ही ऐसे महापुरुष हुये जिन्होंने ईश्वर की दासता को भी अस्वीकार किया और आत्मा की सर्वोच्च सत्ता को प्रतिष्ठापित किया। जहां एक ओर दुनिया के अन्य भगवान् अपनी शरण में आने के लिये व्यक्ति को आमंत्रित करते रहे वहां महावीर ने नर को ही नारायण और आत्मा को ही परमात्मा बनने की राह बताते हुये आत्म-शक्ति का मंत्र दिया। महावीर ने कहीं कभी नहीं कहा कि उनकी शरण में आने से ही कल्याण हो जायगा। उन्होंने सदा यही दुहराया कि स्वयं के पौरुष से अपनी आत्मा को अनन्त सुखों को प्राप्त कर मोक्ष पाया जा सकता है। मेरी नम्र राय में महावीर की यह महान् क्रान्ति थी। यों तो महावीर ने प्रारम्भ से ही राजसुख, ऐश्वर्य और भोग की परम्परा को छोड़कर साधना के कठिन मार्ग पर चलने का क्रान्तिकारी निर्णय किया था किन्तु उसके बाद भी उपदेश के लिये उन्होंने पंडितों की भाषा संस्कृत आदि न अपनाते हुये जन-भाषा को ही महत्त्व दिया। भाषा के क्षेत्र में यह महावीर की ऐसी क्रान्ति है जिसे वर्तमान सन्दर्भ में भी अंग्रेजी और हिन्दी के समाधान में प्रयुक्त किया जा सकता है।

भगवान् महावीर की एक मौलिक क्रान्ति चिन्तन के क्षेत्र में है और वह है—अनेकांत। महावीर ने चिन्तन का द्वार हमेशा खुला रखा और सत्य प्राप्ति के लिये कभी कोई दरवाजा बन्द नहीं होने दिया। समग्र सत्य एक ही दृष्टि से अथवा एक ही पहलू से नहीं देखा जा सकता इसीलिये महावीर ने कहा—दूसरों के कथन में भी सत्य का अंश हो सकता है। केवल मेरा ही कहना ठीक है यह आग्रह मिथ्या है। विनोबा भावे और काका कालेलकर जैसे मनीषी भी महावीर की सबसे बड़ी देन अनेकान्त मानते हैं। वस्तुतः अहिंसा का वैचारिक पक्ष ही अनेकान्त है। जहां अनेकान्त दृष्टि आई वहां विग्रह और द्वन्द्व हो ही नहीं सकता। सारे झगड़ों और युद्ध के मूल में हमारा आग्रह काम करता है। महावीर ने चिन्तन के इस उदार दृष्टिकोण को लेकर महान् क्रान्तिकारी विचार-प्रवर्तन किया।

धर्म के नाम पर उस युग में हिंसा को मिली हुई मान्यता के विरुद्ध महावीर ने आवाज उठाई। यज्ञ, अनुष्ठानों और पशु-बलि के नाम पर होने वाली हिंसा को अधर्म बताते हुये महावीर ने अहिंसा धर्म का पुनः पाठ पढ़ाया। ठीक इसी युग में गौतम बुद्ध ने भी अहिंसा और विशेषतः करुणा पर बल देते हुये श्रमण-धारा का प्रवाह प्रवाहित किया।

महावीर की क्रान्ति केवल परोपदेश अथवा दूसरों को सुधारने के लिये नहीं बल्कि स्वयं उनके जीवन से प्रस्फुटित हुई थी। इसीलिये महावीर का विचार और आचार सन्तुलित है। विडम्बना तब होती है जब केवल वैचारिक बोझ को ढोता

हुआ व्यक्ति अपनी चिन्ता न करते हुये दूसरों को ही सुधारने का प्रयत्न करता है। भगवान् महावीर १२½ वर्षों तक घोर तपस्या के बाद केवल्य ज्ञान प्राप्त होने पर ही उपदेष्टा बने।

भगवान् महावीर की पच्चीसवीं निर्वाण शताब्दी के इस वर्ष में यह आवश्यक है कि हम उनके जीवन और दर्शन का पुनर्मूल्यांकन करें। हजारों वर्षों से जिस लकीर को पीटते आये हैं उसी लकीर के फकीर बनकर यदि हम चलें तो हम केवल रूढ़ियों में ही फंसे रहेंगे। प्रभातफेरियों, जुलूसों और महावीर के जयघोषों तक ही अपनी श्रद्धा और भक्ति न रखते हुये जीवन में भी उनके उपदेशों को अपना कर क्रान्ति का बीजारोपण करना होगा। महापुरुषों के गुणानुवाद कर्म-निर्जरा के कारण तो बनते हैं किन्तु केवल उतना ही पर्याप्त नहीं है बल्कि महापुरुषों के द्वारा बताये गये मार्ग पर चलना भी जरूरी है। हमें आशा करनी चाहिए कि यह वर्ष महावीर की क्रान्तिकारी विचारधारा को हमारे जीवन की जड़ता समाप्त कर नई ज्योति प्रदान करेगा।
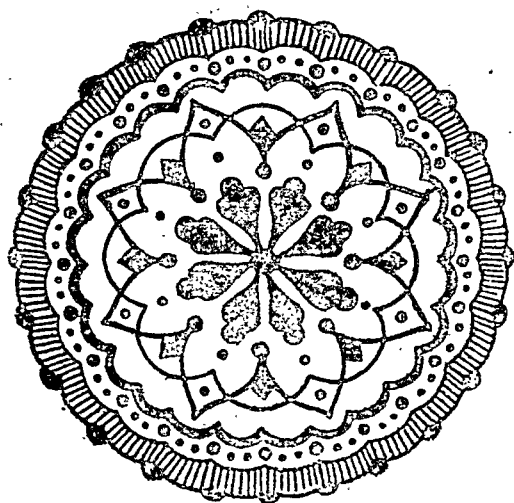
भगवान् महावीर

का

धर्म-परिवार

१. प्रमुख शिष्य—इन्द्रभूति (गौतम) आदि ११ गणधर
२. प्रमुख शिष्या—आर्या चन्दनबाला
३. प्रमुख श्रावक—गाथापति आनन्द
४. प्रमुख श्राविका—रेवती
५. श्रमण संख्या—१४,०००
६. श्रमणी संख्या—३६,०००
७. श्रमणोपासक संख्या—१,५९,०००
८. श्रमणोपासिका संख्या—३,१८,०००
९. केवली संख्या—७००
१०. मनःपर्यवज्ञानी संख्या—५००
११. अवधिज्ञानी संख्या—७००
१२. वैक्रियलब्धिधारी संख्या—७००
१३. पूर्वधारी संख्या—३००
१४. वादी संख्या—४००

भगवान् महावीर
के
४२ वर्षावास

ग्रामांक	क्रमांक	कुलांक
१. अस्थिक ग्राम	१	१
२. आलभिका	७	१
३. चंपा	३,१२,२५	२
४. नालंदा	२,३४,३८	३
५. अपापा (मध्यमा)	४२	१
६. पृष्ठ चम्पा	४	१
७. प्रणित भूमि	६	१
८. भद्रिका	५,६	२
९. मिथिला	२६,२७,३६,३९,४०	६
१०. राजगृह	८,१३,१६,१८,१९,२२ २४,२९,३३,३७,४१	११
११. वाणिज्य ग्राम	१५,१७,२३,२८,३०	६
१२. वैशाली	११,१४,२०,२१,३१,३२,३५	६
१३. श्रावस्ती	१०	१
		४२

❖❖

विश्व शांति के सन्दर्भ में भगवान् महावीर का सन्देश

• डॉ. (श्रीमती) शान्ता भानावत,
एम.ए., पी-एच.डी.

आज व्यक्ति, परिवार, समाज और विश्व सभी युद्ध की विभीषिका से अशांत और भयत्रस्त हैं। शीतयुद्ध और गृहयुद्ध की यह चिनगारी कभी भी विश्व-युद्ध का रूप ले सकती है। इतिहास के पृष्ठ जन-संहार और रक्तपात से भरे पड़े हैं। हाल ही में बंगला देश, पाकिस्तानी अधिकारियों की तानाशाही, सत्ता लोलुपता और शोषण वृत्ति के कारण मौत और जुल्मों का देश बना। पाकिस्तानी पिचाशों ने कितने ही निहत्थे पुरुषों, अबोध बालक-बालिकाओं और युवक-युवतियों को अपनी गोलियों का शिकार बनाया। कितनी ही माताओं और बहिनों के शील को भंग कर उन्हें अपने मनोरंजन का साधन बनाया है। इस अपार नर संहार के पीछे क्या रहस्य था ? अपना स्वार्थ-पोषण, सत्तालिप्सा और पूंजीपतियों को संरक्षण। राजनीति वेत्ताओं का कहना है कि जो राष्ट्र अर्थ, शस्त्र और धन-धान्य में समर्थ होता है वह सदैव कमजोर राष्ट्र को दबाने की कोशिश करता है। "जिसकी लाठी, उसकी भैंस" वाला सिद्धान्त आज भी अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर अपना प्रभाव दिखाता हुआ परिलक्षित होता है।

हिंसा से वैर बढ़ता है। आज जो अशक्त है बलवान उसे दबाता है। वह कमजोरी के कारण उसका प्रतिकार नहीं कर पाता पर जब भी वह सशक्त होगा, अपना प्रतिशोध अवश्य लेगा। इससे हिंसा-प्रतिहिंसा की शृङ्खला बढ़ती चली जाएगी और इस क्रम में प्राणियों की हत्यायें होंगी, राष्ट्र की सम्पत्ति नष्ट होगी, व्यक्ति की सृजनात्मक शक्ति का ह्रास होगा और मानव सभ्यता का सम्पूर्ण विकास निःशेष हो जाएगा। इस हिंसाजन्य क्रूर प्रवृत्ति से बचने के लिए भगवान् महावीर ने अहिंसा के मार्ग को ही श्रेष्ठ उपाय बतलाया है।

१. अहिंसावाद :

एक समय था जब दुनिया बहुत बड़ी थी। आज वैज्ञानिक प्रगति और तकनीकी विकास ने समय और स्थान की दूरी पर विजय प्राप्त कर दुनिया को

बहुत छोटा बना दिया है। परिणामस्वरूप दुनिया के किसी भी भाग में घटित साधारण सी घटना का प्रभाव भी पूरे विश्व पर पड़ता है। आज दो राष्ट्रों की लड़ाई केवल उन्हीं तक सीमित नहीं रहती। उससे विश्व के सभी राष्ट्र आन्दोलित हो उठते हैं और जन-मानस अशान्त और भयभीत हुये बिना नहीं रहता। भगवान् महावीर ने वैयक्तिक, सामाजिक और राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय पर भय-मुक्ति के लिए अहिंसा सिद्धांत का उद्घोष किया। उन्होंने बड़ी दृढ़ता के साथ कहा—'सभी जीव जीना चाहते हैं, मरना कोई नहीं चाहता।' सबको अपना जीवन प्रिय है। मनुष्य तो क्या उन्होंने, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति के जीवों की रक्षा करने तक की पहल की है। अखण्ड सृष्टि के प्रति यह प्रेम-मार्ग ही विश्व-शान्ति का मूल है।

महावीर का अहिंसा-सिद्धांत बड़ा सूक्ष्म और गहन है। उन्होंने किसी प्राणी की हत्या करना ही हिंसा नहीं माना। उनकी दृष्टि में मनमें किये गये हिंसक कार्यों का समर्थन करना भी हिंसा है। यदि व्यक्ति अहिंसा की इस भावना को किंचित भी अपने हृदय में स्थान दे दे तो फिर अशांति और आकुलता हो ही क्यों?

२. समतावाद :

अहिंसा सिद्धांत का ही विधायक तत्त्व है समता, विषमता का अभाव। दुनिया में कोई छोटा-बड़ा नहीं है। सभी समान हैं। समतावाद के इस सिद्धांत द्वारा महावीर ने जातिवाद, वर्णवाद और रंगभेद का खण्डन किया और बताया कि व्यक्ति जन्म या जाति से बड़ा नहीं है। उसे बड़ा बनाते हैं उसके गुण, उसके कर्म।

कम्मुणा बंभणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ।
वइसो कम्मुणा होइ, सुद्दो होइ कम्मुणा ॥

अर्थात् कर्म से ही व्यक्ति ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र बनता है। महावीर के समय में वर्ण-व्यवस्था बड़ी कठोर थी। शूद्रों को समाज में अधम और निकृष्ट माना जाता था। नारी की भी यही स्थिति थी। उसके लिए साधना के मार्ग बन्द थे। महावीर ने इस व्यवस्था के विरुद्ध क्रांति की। उन्होंने हरीकेशी जैसे चांडाल को अपने मुनिवर्ग में दीक्षित किया और चन्दनबाला जैसी नारी को दीक्षित ही नहीं किया वरन् साध्वी संघ का सम्पूर्ण नेतृत्व भी सौंपा। वे स्वयं क्षत्रिय थे पर उनके अनुयायियों में ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र सभी सम्मिलित थे।
उन्होंने कहा—

न वि मुंड़िएण समणो, न ओंकारेण बंभणो।
न मुणी रण्णावासेणः कुसचीरेण न तावसो ॥
समभाए समणो होइ. बंभचेरेण बंभणो।
नाणेण य मुणी होइ, तवेण होइ तावसो ॥

अर्थात् सिर मुंडाने से कोई श्रमण नहीं होता, ओंकार के उच्चारण से ब्राह्मण, वन में वास करने मात्र से मुनि और कुसचीर धारण करने से तापस नहीं बन जाता, परन्तु समभाव रखने से श्रमण, ब्रह्मचर्य से ब्राह्मण, ज्ञान से मुनि और तपाराधना से ही तापस बनता है।

महावीर के इस समता-सिद्धांत की आज भी विश्व को बड़ी जरूरत है। भारत में वर्ण-व्यवस्था में आज भले ही थोड़ी ढील आई हो पर दक्षिण अफ्रीका और अमेरिका में काले-गोरे का भेद आज भी जारी है। नीग्रो आज भी वहां हीन दृष्टि से देखा जाता है। धर्म, सम्प्रदाय और जाति के नाम पर आज भी विश्व में तनाव और भेद-भाव है। यदि महावीर के इस सिद्धांत को सच्चे अर्थों में अपना लिया जाय तो यह विश्व सबके लिए आनन्दस्थली और शांतिधाम बन जाय।

३. अपरिग्रहवाद :

२०वीं शताब्दी में शांति का क्षेत्र बड़ा व्यापक हो गया है। आज व्यक्तिगत शांति के महत्व से अधिक महत्व विश्वशांति का है। इस सामूहिक शांति की प्राप्ति के लिए मानव ने अनेक साधन ढूंढ निकाले हैं लेकिन अब तक उसे शांति नहीं मिल पाई है। इसका मूल कारण है—आर्थिक वैषम्य। आज विज्ञान से लदे भौतिकवादी युग में रोटी-रोजी, शिक्षा-दीक्षा के जितने भी साधन हैं उन पर मानव-समाज के कुछ इने-गिने व्यक्तियों का अधिकार है जो निर्दयी और स्वार्थी बन कर अपने धन के नशे में दूसरों का शोषण करते हैं। इस विषम स्थिति का मार्मिक चित्रण करते हुए प्रगतिशील कवि श्री रामधारीसिंह 'दिनकर' ने लिखा है—

श्वानों को मिलता दूध वस्त्र, भूखे बालक अकुलाते हैं।
मां की हड्डी से चिपक ठिठुर, जाड़ों की रात बिताते हैं।।
युवती की लज्जा वसन बेच, जब व्याज चुकाये जाते हैं।
मालिक जब तेल फुलेलों पर, पानी सा द्रव्य बहाते हैं।।

तब सचमुच क्रांति आती है। यह क्रांति हिंसक भी हो सकती है और अहिंसक भी। इस क्रांति-प्रक्रिया की विवेचना में साम्यवाद, संघवाद, समाजवाद, आदर्शवाद, व्यक्तिवाद, अराजकतावाद आदि कई वाद सामने आये पर वे समस्या के मूल को नहीं पकड़ पाये। किसी में एक पार्टी का हित है तो किसी में रक्तपात, किसी में अव्यावहारिकता है तो किसी में खयाली पुलाव। पर भगवान् महावीर ने इस विषमता को दूर करने का जो सूत्र दिया, वह आज भी प्रभावकारी है। उनका यह सिद्धान्त अपरिग्रहवाद के नाम से जाना जाता है।

अपरिग्रहवाद से तात्पर्य है—ममत्व को कम करना, अनावश्यक संग्रह न करना। संसार में झूठ, चोरी, अन्याय, हिंसा, छल, कपट आदि जो पाप होते हैं

उनके मूल में व्यक्ति की परिग्रह बढ़ाने की भावना ही है। अधिकाधिक उपार्जन की प्रबल इच्छा है। इस प्रबल इच्छा को सीमित रखना ही अपरिग्रह है।

मानव की तृष्णा का अन्त नहीं है। चाहे उसे संसार का समस्त ऐश्वर्य भी मिल जाय फिर भी उसकी इच्छा और अधिक प्राप्त करने की रहेगी। प्रभु महावीर ने कहा है—

सुवण्ण रूवस्स दु पव्वया भवे, सिया हु कैलास समा अणंतिया।
नरस्स लुद्धस्स रातेहि किंच्चि, इच्छाहु आगास समा अणंतिया॥

अर्थात् सोने और चांदी के असंख्य कैलाश भी खड़े कर दिए जायें तो भी व्यक्ति के लिए वे पर्याप्त नहीं होते क्योंकि इच्छाएं आकाश के समान अनन्त होती हैं। इन अनन्त आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मानव किंकर्तव्य विमूढ़ हो रात-दिन परिश्रम करता ही रहता है। तब उसे न स्वयं के स्वास्थ्य की चिंता रहती है न परिवार की। उसका मस्तिष्क अशांत बना रहता है, वह रात-दिन अधिकाधिक धन संग्रह कैसे करे। इसी चिन्ता में लगा रहता है।

जिस व्यक्ति के पास कुछ नहीं होता वह यह सोचता है कि किसी प्रकार जीवन-यापन योग्य सामग्री मिल जाय तो बस। जब इतना मिल जायेगा तो वह सोचेगा कि मुझे बस इतना और मिल जाये कि यदि भविष्य में बीमार पड़ जाऊं, मुझ में कार्य करने की क्षमता न रहे, तब मैं अपना जीवन निर्वाह आसानी से कर सकूं। उतना धन संग्रह कर लेने पर उसकी इच्छा वैभवपूर्ण जीवन जीने की होगी, फिर उसके पास कार हो, बंगला हो, विलासिता की सामग्री हो। इतना कर लेने पर वह अपने परिवार के अन्य सदस्यों के निमित्त पीढ़ियों के लिए धन संचय की कल्पना करने लगेगा। इस सीमा रहित इच्छाओं की पूर्ति में अशांत बना मानव मन रात्रि को आराम से सो भी नहीं सकता। उसको नींद की गोलियां खानी पड़ती हैं। इस प्रकार वह शारीरिक और मानसिक दृष्टि से सदा अशांत बना रहता है।

इन इच्छाओं पर अंकुश लगाने का एक बहुत ही सरल उपाय भगवान् महावीर ने बताया। उन्होंने कहा—आवश्यकता से अधिक संग्रह मत करो। अपनी आवश्यकताओं को सीमित बनाओ। यदि व्यक्ति अपनी आवश्यकताएं सीमित कर लेगा तो उसकी इच्छाएं स्वतः सीमित हो जायेंगी।

विज्ञान की उन्नति से यद्यपि आज वस्तुओं का उत्पादन कई गुना बढ़ गया है तथापि उनका अभाव ही अभाव परिलक्षित होता है। आज भी बहुत से ऐसे लोग हैं जिनके पास खाने को अन्न और पहनने को वस्त्र सुलभ नहीं हैं। कारण कि मानव, समाज और राष्ट्र की संग्रह वृत्ति ने कृत्रिम अभाव पैदा कर दिया है। आज का व्यक्ति बड़ा लोभी है। वह वस्तुओं का संग्रह कर बाजार में उसका अभाव देखना चाहता है। ज्योंही वस्तुओं का अभाव हुआ कि उनकी कीमतों को प्राप्त कर

वह लखपति और करोड़पति बनना चाहता है। वस्तुओं के अभाव में उत्पन्न हुई अपने ही भाइयों की परेशानियों की वह बिलकुल भी चिन्ता नहीं करता। आज गोदामों में पड़ा लाखों टन अनाज यों ही सड़ जाता है। विदेशों में भी अतिरिक्त खाद्यान्नों को इसलिए जला दिया जाता है अथवा नष्ट कर दिया जाता है कि बाजार का निर्धारित भाव घटने न पाये।

आवश्यकता से अधिक वस्तुएं एक स्थान पर संगृहीत न की जायें तो वे सबके लिए सुलभ हो जायेंगी फिर पूंजीवाद और साम्यवाद के नाम से जो विरोध और संघर्ष आज चल रहे हैं, वे स्वतः ही समाप्त हो जायेंगे।

भगवान् महावीर ने स्पष्ट कहा—अशांति का मूल कारण वस्तु के प्रति ममत्व एवं आसक्ति का होना है। संगृहीत वस्तु पर किसी प्रकार की आंच नहीं आये, उसे कोई लेकर चला न जाय, इस चिन्ता से उसके संरक्षण और संवर्द्धन की भावना पैदा होती है। अन्य व्यक्ति उस वस्तु को लेना चाहेगा तो उससे संघर्ष होगा। फलस्वरूप युद्ध होगा, रक्तपात होगा और अशांति बढ़ेगी।

जिन व्यक्तियों या वस्तुओं के प्रति आसक्ति का भाव आ गया है उसके संरक्षण और संवर्द्धन के लिए, दूसरों का अहित करना, झूंठ बोलना, कपट करना, चोरी करना, दूसरों से राग-द्वेष रखना आदि कुप्रवृत्तियों का बढ़ना स्वाभाविक है। ये ही प्रवृत्तियां अशान्ति को जन्म देती हैं।

संसार में कोई भी व्यक्ति न कुछ साथ लेकर आता है न कुछ साथ लेकर जाता है, फिर अर्जित वस्तुओं पर इतनी ममता क्यों? तृष्णा व हाय-हाय क्यों? संघर्ष व द्वेष क्यों? वस्तुएं सभी यहीं पड़ी रहेंगी, हमें सब यहीं छोड़ कर जाना है, जीवन क्षणभंगुर है। न मालूम कब मृत्यु आ जाय। अतः हमें ममत्व को छोड़ समभाव को अपनाना चाहिए। यही ममत्व भाव भगवान् महावीर का अपरिग्रह-वाद है।

जब यह ममत्व भाव मन में नहीं आएगा तब एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को हड़पने की कोशिश नहीं करेगा, उसे अपना उपनिवेश नहीं बनायेगा, तानाशाह बनकर वहां के जन-धन का संहार नहीं करेगा। किसी को अपने आधीन रखने की भावना उसमें जन्म नहीं लेगी। सभी स्वाधीन हैं। वे स्वतंत्रतापूर्वक अपने व्यक्तित्व का विकास करें। ऐसी सर्व-हितकारी भावना से निश्चय ही विश्वशांति को बल मिलेगा।

कार्ल मार्क्स ने भी आर्थिक वैषम्य को मिटाने के लिए वर्ग-संघर्ष और अतिरिक्त मूल्य के सिद्धांत का प्रतिपादन किया है। पर मार्क्स की विवेचना का आधार भौतिक पदार्थ है, उसमें चेतना को नकारा गया है जबकि महावीर की विवेचना चेतना-मूलक है। इसका केन्द्र-बिन्दु कोई जड़ पदार्थ नहीं, वरन् व्यक्ति स्वयं है।

४. अनेकान्तवाद :

अशांति का एक मुख्य कारण हठवादिता, दुराग्रह, और एकान्तिकता है। विज्ञान के विकास ने व्यक्ति को अधिक बौद्धिक और तार्किक बना दिया है। वह प्रत्येक तर्क को विज्ञान की कसौटी पर कस कर उसे ही सही मानने का दंभ भरता है। दूसरों के दृष्टिकोण को समझने का वह प्रयत्न नहीं करता। इस अहं भाव और एकान्त दृष्टिकोण से आज व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र सभी पीड़ित हैं, इसीलिए उनमें संघर्ष है, सौहार्द का अभाव है।

भगवान् महावीर ने इस स्थिति से विश्व को उबारने के लिए अनेकान्तवाद (सिद्धान्त) का प्रतिपादन किया। उनका कहना है कि प्रत्येक वस्तु के अनन्त पक्ष हैं। उन पक्षों को उन्होंने धर्म की संज्ञा दी। इस दृष्टिकोण से संसार की प्रत्येक वस्तु अनन्तधर्मात्मक है। किसी भी पदार्थ को अनेक दृष्टियों से देखना, किसी भी वस्तुतत्व का भिन्न-भिन्न अपेक्षाओं से पर्यालोचन करना अनेकान्त है।

अनन्त धर्मात्मक वस्तु को यदि कोई एक ही धर्म में सीमित करना चाहे, किसी एक धर्म के द्वारा होने वाले ज्ञान को ही समग्र वस्तु का ज्ञान समझ बैठे तो यह वस्तु को यथार्थ स्वरूप में समझना न होगा। सापेक्ष स्थिति में ही वह सत्य हो सकता है, निरपेक्ष स्थिति में नहीं। हाथी को खंभे जैसा बतलाने वाला व्यक्ति अपनी दृष्टि से सच्चा है, परन्तु हाथी को रस्सा जैसा कहने वाले की दृष्टि में वह सच्चा नहीं है। अतः हाथी का समग्र ज्ञान करने के लिए, समूचे हाथी का ज्ञान कराने वाली सभी दृष्टियों की अपेक्षा रहती है। इसी अपेक्षा-दृष्टि के कारण अनेकान्तवाद का नाम अपेक्षावाद और स्याद्वाद भी है। स्यात् का अर्थ है—किसी अपेक्षा से, किसी दृष्टि से और वाद का अर्थ है—कथन करना, अपेक्षा-विशेष से वस्तुतत्व का विवेचना करना ही स्याद्वाद है।

अनेकान्तवाद कहता है कि "यह वस्तु एकान्ततः ऐसी ही है, ऐसा मत कहो। 'ही' के स्थान पर 'भी' का प्रयोग करो। इससे ध्वनित होगा कि इस अपेक्षा से वस्तु का स्वरूप ऐसा भी है। इस प्रकार के कथन से संघर्ष नहीं बढ़ेगा और परस्पर समता तथा सौहार्द का मधुर वातावरण निर्मित होगा।

भगवान् महावीर ने यह अच्छी तरह जान लिया था कि जीवन तत्व अपने में पूर्ण होते हुए भी वह कई अंशों की अखण्ड समष्टि है। इसीलिए अंशों को समझने के लिए अंश का समझना भी जरूरी है। यदि हम अंश को नकारते रहे, उसकी उपेक्षा करते रहे तो हम अंशी को उसके सर्वाङ्ग सम्पूर्ण रूप में नहीं समझ सकेंगे। सामान्यतः झगड़े, दुराग्रह, हठवादिता और एक पक्ष पर अड़े रहने के कारण ही होते हैं। यदि उनके समस्त पहलुओं को अच्छी तरह देख लिया जाय तो कहीं

न कहीं सत्यांश निकल आयेगा। एक ही वस्तु या विचार को एक तरफ से न देख कर उसे चारों ओर से देख लिया जाय, फिर किसी को एतराज न रहेगा।

प्रसिद्ध वैज्ञानिक आइन्स्टाइन ने अपने आपेक्षवाद सिद्धांत को इसी भूमिका पर प्रतिष्ठित किया है। व्यक्ति ही नहीं आज के तथाकथित राष्ट्र भी दुराग्रह और हठवाद को छोड़कर यदि विश्व की समस्याओं को सभी दृष्टियों से देखकर उन्हें हल करना चाहें तो अनेकांत दृष्टि से ससम्मान हल कर सकते हैं।

महावीर को हुए आज लगभग २५०० वर्ष बीत गये हैं पर उनका अहिंसा, समता, अपरिग्रह और अनेकांत का सिद्धांत आज भी उतना ही ताजा और प्रभावकारी है जितना उस समय था।
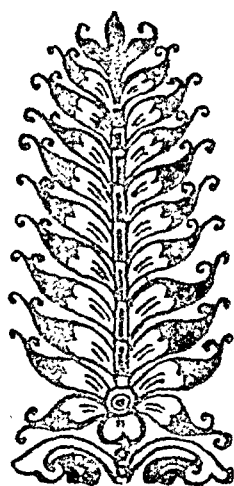
राष्ट्र-नेताओं की दृष्टि में—

भगवान् महावीर

१. महात्मा गांधी :

महावीर स्वामी का नाम इस समय यदि किसी सिद्धांत के लिए पूजा जाता है तो वह अहिंसा है। प्रत्येक धर्म की उच्चता इसी बात में है कि उस धर्म में अहिंसा तत्व की प्रधानता हो। अहिंसा तत्व को यदि किसी ने भी अधिक से अधिक विकसित किया हो, तो वे महावीर स्वामी थे।

२. श्री मावलंकर :

भगवान् महावीर केवल जैनियों के लिए ही नहीं बल्कि समस्त संसार के लिए पूज्य हैं। आजकल के भयानक समय में भगवान् महावीर की शिक्षाओं की बड़ी जरूरत है।

३. डॉ. राजेन्द्रप्रसाद :

मैं अपने को धन्य मानता हूँ कि मुझे महावीर स्वामी के प्रदेश में रहने का सौभाग्य मिला है। अहिंसा जैनों की विशेष सम्पत्ति है। जगत् के अन्य किसी भी धर्म में अहिंसा सिद्धांत का प्रतिपादन इतनी सफलता से नहीं मिलता।

४. सी. राजगोपालाचार्य :

भगवान् महावीर का संदेश किसी खास कौम या फिरके के लिए नहीं है, बल्कि समस्त संसार के लिए है। अगर जनता महावीर स्वामी के उपदेशों के अनुसार चले तो वह अपने जीवन को आदर्श बना सकती है। संसार में सच्चा सुख और शांति उसी सूरत में प्राप्त हो सकती है जबकि हम उनके बताए हुए मार्ग पर चलें।

५. श्री लालबहादुर शास्त्री :

रिश्वत, बेईमानी, अत्याचार अवश्य नष्ट हो जायें यदि हम भगवान् महावीर की सुन्दर और प्रभावशाली शिक्षाओं का पालन करें। बजाय इसके कि हम दूसरों को बुरा कहें और उनमें दोष निकालें, अगर भगवान् महावीर के समान हम सब अपने दोषों और कमजोरियों को दूर कर लें तो सारा संसार खुद बखुद सुधर जाये।

६. श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर :

भगवान् महावीर ने भारत में ऐसा सन्देश फैलाया कि धर्म केवल सामाजिक रूढ़ियों के पालन करने में नहीं किन्तु सत्य धर्म का आश्रय लेने में मिलता है।

७. डॉ. जाकिर हुसैन :

श्रमण भगवान् महावीर ने आज से ढाई हजार साल पहले मानवता को सत्य, अहिंसा, शांति और सद्‌भावना का जो संदेश दिया था, आज न केवल उनका प्रचार करना है, वरन् उनके आदर्शों को अपने जीवन में अमल करने की आवश्यकता है।

८. राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन :

भगवान् महावीर एक महान् तपस्वी थे जिन्होंने सदा सत्य और अहिंसा का प्रचार किया। इनके आदर्शों पर चलने और उसे मजबूत बनाने का यत्न किया जाना चाहिए।

९. डॉ. राधाकृष्णन् :

महावीर को 'जिन' अर्थात् विजेता की उपाधि प्राप्त है, किन्तु उन्होंने किसी देश को नहीं जीता। उन्होंने विजय प्राप्त की थी अपने अन्तरङ्ग पर। वे महावीर कहलाये इस कारण नहीं कि उन्होंने संसार के किन्हीं युद्धों में भाग लिया किन्तु उन्होंने अपनी आत्म-प्रवृत्तियों से युद्ध कर उन पर विजय प्राप्त की थी। दृढ़ता के साथ तप, संयम और आत्म-शुद्धि व ज्ञानोपासना के द्वारा उन्होंने मनुष्य जीवन में ही देवत्व प्राप्त कर लिया था। ●

भगवान् महावीर जीवन और उपदेश

• ले० श्री विपिन जारोली

मानव मात्र में ईश्वरीय सत्ता के व्याख्याता, श्रमण-संस्कृति के उन्नायक और 'जीओ और जीने दो' के उद्घोषक भगवान् महावीर का जन्म ईसा के ५९९ वर्ष पूर्व चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के दिन हुआ था। महावीर के पिता महाराजा सिद्धार्थ, वैशाली गणराज्य के क्षत्रिय कुण्ड ग्राम (वर्तमान बसाड़-बिहार) के अधिपति थे और माता भगवती त्रिशला महारानी, महान् प्रतापी राजा चेटक (अधिपति-वैशाली गणराज्य) की बहिन थी। यह क्षत्रिय वंश ज्ञातृवंशीय था। अतः महावीर को तत्कालीन भाषा में 'नायपुत्त' भी कहा गया है।

महावीर का बचपन का नाम 'वर्द्धमान' था। वर्द्धमान नाम देने का कारण, इनके जन्म के समय राज्य की सम्पत्ति, वैभव एवं गौरव में सभी दृष्टि से वृद्धि का होना था। 'महावीर' नाम तो इनके अत्यन्त शक्तिशाली, निर्भीक और अति उत्कट साधक जीवन के कारण हुआ था।

महावीर के माता-पिता, परिजन तथा अधिकांश रिश्तेदार तीर्थंकर पार्श्वनाथ के आज्ञानुवर्ती तपस्वी–मुनियों के अनुयायी थे। इस कारण कभी-कभी इन तपस्वी मुनि-महात्माओं से इनका भी सम्पर्क हो जाया करता था। इस सम्पर्क से इनके जीवन पर भी संसार की असारता और निस्सारता का प्रभाव पड़ा और त्यागी सा जीवन व्यतीत करने लगे। इनका मन सांसारिक क्रिया-कलापों से परे, परम शान्ति को प्राप्त करने के चिन्तन और मनन में ही लगा रहता था। महावीर चाहते थे कि मानव जाति का उद्धार हो और वह प्रचलित अंधविश्वासों, क्रियाकाण्डों तथा अशान्तिमय जीवन से मुक्त होकर, सुखमय मार्ग की ओर प्रवृत्त हो। उनका मन अहर्निश एक ऐसे ही मार्ग की खोज में लगा रहता था। वे इस चिन्तन और मनन से इस निष्कर्ष पर पहुंचे थे कि राजप्रासादों में रह कर तो, वे कुछ भी नहीं कर सकेंगे। अतः उन्होंने ३० वर्ष की युवावस्था में यह संकल्प लेकर प्रव्रज्या ग्रहण करली कि "मैं किसी भी प्राणि को पीड़ा न दूंगा—सर्व सत्त्वों से मैत्रीभाव

रखूँगा। अपने जीवन में कितनी ही बाधाएँ क्यों न उपस्थित हों, उन्हें बिना किसी दूसरे की सहायता के समभाव पूर्वक सहन करता हुआ, जब तक पूर्णबोध (कैवल्य) प्राप्त न हो जाय, तब तक सामूहिक जन-सम्पर्क से सर्वथा अलग रहूंगा।" इस प्रतिज्ञा को आजीवन पालन करते रहने के लिए, उन्होंने अपने आपको संयम की ओर प्रवृत्त किया और शक्ति–संतुलन को बनाये रखते हुए तपस्या का आलम्बन लिया। भगवान् बुद्ध, जो कि इनके ही समकालीन महात्मा थे, शक्ति–संतुलन की ओर ध्यान दिये बिना ही, तपस्या की ओर प्रवृत्त हो गये थे, पीड़ित हुए और उसे निष्फल मानकर भटक गये थे। यह दूसरी बात है कि सिद्धि उन्हें भी प्राप्त हुई थी, परन्तु वह मार्ग तपस्या का नहीं होकर, और था।

महावीर जिस युग में पैदा हुए, उस समय देश में अनेक मत-मतान्तर थे। सर्वत्र पुरोहितवाद (ब्राह्मणवाद) का बोलबाला था। कोई भी व्यक्ति स्वतंत्र रूप में ईश्वरीय आराधना का अधिकारी नहीं था। देवों से उसका सीधा सम्बन्ध समाप्त कर दिया गया था। बिना ब्राह्मण की मध्यस्थता के उसका सम्बन्ध देवताओं से हो ही नहीं सकता था। इसके अलावा भी इस वर्ग ने अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए, यज्ञ आदि अनुष्ठानों को इतनी अधिक खर्चीली सामग्री से सम्पन्न होने वाले बना दिये थे कि साधारण व्यक्ति तो इस ओर बढ़ने का साहस ही नहीं कर सकता था। विधि-विधानों में भी उसने यह नियम बना दिया था कि यज्ञ आदि अनुष्ठान-क्रियाएं करवाने का अधिकार केवल ब्राह्मण वर्ग को ही है, अन्य कोई भी व्यक्ति उन्हें सम्पन्न करा ही नहीं सकता। परिणाम यह हुआ कि जात्याभिमान बढ़ गया और ऊंच-नीच की भावनाओं से वर्ग भेद, वर्ण भेद, जाति भेद आदि समाज विघटनकारी प्रवृत्तियां बढ़ती ही चली गई। समाज का एक अंग विशेष, जो कि सेवा का व्यवसाय करता था, जाति एवं वर्ण-व्यवस्था के आधार पर 'शूद्र' शब्द से सम्बोधित हुआ और वह अछूत माना गया। इस वर्ग के लिए सामाजिक विधि-विधान भी इस प्रकार के बना दिये गये थे कि वह ईश्वरीय आराधना, पठन-पाठन, सामाजिक-अधिकार-उपभोग आदि प्रचलित जीवन जीने के अधिकारों से वंचित कर दिया गया। परिणाम यह हुआ कि यह वर्ग सभी दृष्टियों से पूर्ण उपेक्षित हो गया। स्त्री जाति की भी बहुत कुछ ऐसी ही दशा थी। समानता के उसके समस्त अधिकार छीन लिये गये थे। बिना पति के वह अकेली किसी भी क्षेत्र में कार्य करने की दृष्टि से स्वतंत्र नहीं थी। धार्मिक क्रियाएँ, यज्ञ-अनुष्ठान आदि में पशुबलि के अलावा कहीं-कहीं पर, नर बलि भी दी जाने लगी थी। 'वैदिकी हिंसा-हिंसा न भवति' और 'स्त्री शूद्रौ नाधीयताम्' के आधार पर सर्वत्र समाज में शोषण, उत्पीड़न, पाखण्ड एवं भ्रष्टाचार का व्यवसाय चलने लगा था। जीवन-जीने के विधि-विधानों की जटिलताओं से मानव समाज अपने आप में असहाय था। कुल मिलाकर उस समय में, मानव समाज की दशा अत्यन्त ही दयनीय हो गई थी।

ऐसे विषम वातावरण एवं कठिन समय में, महावीर ने गृह-त्याग कर, साधना का पथ अंगीकार किया था। उनकी साधना का पथ, कोई साधारण पथ नहीं था। प्रव्रजित होने के बाद उन्होंने कभी वस्त्र धारण नहीं किये। परिणाम-स्वरूप कठोर शीत, ताप, डांस, मच्छर तथा अनेक छोटे-छोटे जीव-जन्तु-जन्य परितापों और परिषहों को समभाव पूर्वक सहन किया। नग्न होने के कारण बच्चों तथा कुछ मनचले लोगों ने उन पर कंकड़, पत्थर, धूल, कीचड़ आदि फैंके। उसे भी उसी प्रकार सहन किया। तत्कालीन जनपदों तथा अनार्य प्रदेशों में विचरण करते समय, उन पर लोगों ने पागल समझ कर कुत्ते छोड़े, लाठियों से पीटा और अनेक प्रकार की अमानुषिक यातनायें देकर पीड़ित किया। इन सारी असह्य पीड़ाओं को भी उन्होंने शान्ति पूर्वक समभाव से सहन किया और कभी भी पीड़ा देने वालों के प्रति, किसी भी प्रकार का प्रतिकारोत्मक एवं कटुता पूर्ण व्यवहार का विचार तक, मन में नहीं आने दिया। कष्टों की किंचिद् मात्र भी परवाह किये बिना, साधना-पथ पर अविराम गति से बढ़ते रहे। इस प्रकार सिद्धि को प्राप्त करने के लिए उन्होंने लगभग साढ़े बारह वर्ष तक दीर्घ तपस्या का अनुष्ठान किया और बयालीस वर्ष की आयु में पूर्ण बोध (ज्ञान) प्राप्त कर कैवली हुए, पर ब्रह्म का साक्षात्कार किया और 'अर्हत्' पद प्राप्त कर तीर्थंकर बने।

कैवल्य, वीतरागता एवं तीर्थंकरत्व की प्राप्ति के पश्चात् सर्व प्रथम महावीर को, उन तत्कालीन इन्द्र भूति गौतम, सुधर्मा, अग्निभूति आदि ग्यारह महान् पंडितों का सामना करना पड़ा, जोकि वेद-वेदांगों, यज्ञ-अनुष्ठानों तथा पठन-पाठन में निपुण, विशाल गुरुकुलों के अधिष्ठाता थे। इन पंडितों ने जातीय दम्भ और ज्ञान के अहंकार के वशीभूत हो, महावीर को दम्भी, पाखण्डी, इन्द्रजालिया आदि कई भद्दे शब्दों से सम्बोधित किया और उनसे कई उलझन भरे प्रश्नों को पूछ कर, उलझाना चाहा। फिर भी महावीर ने इस प्रकार के अपने प्रति किये गये अशोभनीय व्यवहार का, किसी भी प्रकार का कोई प्रतिकार नहीं किया और उन पंडितों के सभी प्रश्नों का धैर्यता के साथ, शान्तिपूर्वक, अत्यन्त ही सरल भाषा में तात्त्विक दृष्टि से, तर्क पूर्ण उत्तर देकर, सन्तुष्ट किया। जब महावीर ने यज्ञ, अनुष्ठान, आत्मा, स्वर्ग, स्नान, ब्राह्मण आदि का व्यावहारिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से वास्तविक परिभाषा युक्त अभूतपूर्व स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया, तो सभी पंडितों को अपने ज्ञान और जातीय-दम्भ पर ग्लानि पैदा हुई। उन्हें महावीर में एक अलौकिक प्रतिभा और प्रज्ञा के दर्शन हुए और वह (महावीर) एक महान् क्रांति सृष्टा और मुक्तिदूत के रूप में दिखाई दिये। अतः तत्क्षण सभी पंडितों ने अपने आपको सहस्रों शिष्यों सहित उनके चरणों में समर्पित कर दिया और प्रव्रजित हो गये।

महावीर के इस प्रबुद्ध शिष्य समुदाय ने ग्राम, नगर तथा घर-घर में जाकर उनके (महावीर के) सन्देश सत्य, अहिंसा, अनेकान्त, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य आदि का

तत्कालीन लोक-भाषा प्राकृत में इतना प्रचार व प्रसार किया कि अल्पकाल में ही, बिना किसी वर्ण, जाति और वर्ग भेद के राजा—रंक, श्रेष्ठी-निर्धन, ब्राह्मण-शूद्र आदि स्त्री-पुरुषों ने हजारों की संख्या में उनके शिष्यत्व को स्वीकार किया। महावीर के शिष्यों में उन ग्यारह महान् पंडितों के अलावा वीरांगक, वीरयश, संजय, शिव, उदयन, शंख आदि राजा; अभयकुमार, मेघकुमार आदि राजकुमार; सुदर्शन, धन्ना, शालिभद्र आदि श्रेष्ठी; हरिकेषी, अर्जुन माली, शकडाल-पत्र आदि चाण्डाल, हत्यारे और अन्त्यजों के अलावा वसुमती चन्दनबाला, मृगावती, चेलना आदि राजघरानों की राजकुमारियाँ एवं राजरानियाँ भी सम्मिलित थीं। इस प्रकार महावीर ने अपने संघ में ब्राह्मण से लेकर अतिशूद्र तक को, समान आत्मिक विकास के लिये समान अवसर व स्थान प्रदान किये। यही कारण था कि इतने अत्यन्त ही अल्पकाल में, उनके उपदेशों की गूंज बिना किसी डाक, तार, टेलीफोन, रेडियो, टेलिविजन के राढ़ा देश, मगध, विदेह, वत्स, काशी, कौशल, सूरसेन, अवन्ती आदि प्रदेशों में दूर-दूर तक सुनाई देने लगी थी। इतने सारे लम्बे और चौड़े विस्तृत भू-भाग में अपने शिष्य समुदाय सहित महावीर ने केवल वर्षावास के समय को छोड़कर, निरन्तर तीस वर्ष तक पाद विहार किया, धर्म जागरणा की और मानव-कल्याण के उपदेश दिये; लाखों लोगों को सन्मार्ग पर लगा कर, उनकी आत्मा का कल्याण किया। भव्य जीवों को अपने उपदेशामृत से प्लावित करते हुए ७२ वर्ष की दीर्घ आयु में पावांपुरी (बिहार) में कार्तिक की अमा निशा में मोक्ष को प्राप्त किया। जैन परिभाषा में जिसे निर्वाण कहते हैं। निर्वाण के समय उपस्थित तत्कालीन नौ मल्लि, नौ लिच्छवी तथा अन्य गणराज्यों के अधिपतियों ने असंख्य दीपों को प्रज्वलित कर महोत्सव मनाया और दीपावली की। उसी दिन की स्मृति को चिरस्थायी और उसे अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए प्रति वर्ष भारत में यह पावन दिन दीपोत्सव के रूप में मनाया जाता है।

मानव जीवन को सही दिशा की ओर मोड़ने के लिये भगवान् महावीर के इन शाश्वत सत्य स्वरों पर मनन कीजिये—चिन्तन कीजिये।

मनन के ये स्वर

अहिंसा के विषय में :

१. सव्वे जीवा वि इच्छंति, जीविऊं न मरिज्जिऊं।
तम्हा पाणि वहं घोरं, निग्गंथा वज्जयंतिणं ॥
—दशवै० ६।१०

[सभी जीव जीना चाहते हैं; मरना कोई नहीं चाहता। इसलिये प्राणी वध को भयानक जानकर निर्ग्रन्थ उसका वर्जन करें।

२. एयं खु नाणिणो सारं, जं न हिंसति किंचण।
अहिंसा समयं चेव, एयावन्तं वियाणि या ॥
—सूत्र कृत० १–११।६, १०

[ज्ञानी होने का सार यही है कि किसी भी प्राणी की हिंसा न करें। इतना ही अहिंसा का ज्ञान पर्याप्त है, यही अहिंसा का विज्ञान है।]

३. समया सव्वभूएसु, सत्तु-मित्तेसु वा जगे।
पाणाइवाय विरई जावज्जीवाए दुक्करं ॥
—उत्तरा० १६।२५

[विश्व के शत्रु और मित्र सभी जीवों के प्रति सम भाव रखना और जीवन पर्यन्त प्राणियों के घात से विरत होना दुष्कर है।]

विनय के विषय में :

१. विवत्ती अविणीयस्स, संपत्ती विणीयस्स य।
जस्सेयं दुहओ नायं, सिक्खं से अभिगच्छई ॥
—दशवै० ६–२।२१

[अविनीत को विपत्ति की और विनीत को सम्पत्ति की उपलब्धि होती है—यह जो जान लेता है, वही शिक्षा प्राप्त करता है।]

२. एवंधम्मस्स विणओ, मूलं परमो से मोक्खो।
केणं किर्ति सुयं सिग्घं, निस्सेसं वाभिगच्छई॥
—दशवै० ९-२।२

[इसी प्रकार धर्म का मूल है 'विनय' और उसका परम 'अंतिम' फल है—मोक्ष। विनय से कीर्ति, श्लाघनीय श्रुत और समस्त इष्ट तत्त्वों की प्राप्ति होती है।]

३. जे आईरिउ उवज्झायाणं, सूस्सूसावयणं करा।
ते सिं सिक्खा पवड्ढंति, जलसित्ता इव पायवा॥
—दशवै० ९-२।१२

[जो आचार्य और उपाध्याय की सुश्रूषा और आज्ञा का पालन करते हैं, उनकी शिक्षा जल से सिंचित वृक्ष की तरह बढ़ती है।]

४. जे य चंडे मिए थद्धे, दुव्वाई नियडी सढ़े।
वुज्झई से अविणीयप्पा, कट्ठं सोयगयं जहा॥
—दशवै० ९-२।३

[जो चण्ड (क्रोधी) अज्ञ (मृग) स्तब्ध, अप्रियवादी, मायावी और शठ हैं, वह अविनीतात्मा संसार-स्रोत में वैसे ही प्रवाहित होता रहता है, जैसे नदी के स्रोत में पड़ा हुआ काष्ठ।]

प्रमाद के विषय में :

१. असंखयं जीविय मा पमायए, जरोवणीयस्स हु नत्थि ताणं।
एवं विजाणाहि जणे पमत्ते, कण्णू विहिंसा अजया गहिन्ति॥
—उत्तरा० ४।१

[जीवन साधा नहीं जा सकता, इसलिये प्रमाद मत करो। बुढ़ापा आने पर कोई शरण नहीं होता। प्रमादी, हिंसक और अविरत मनुष्य किसी की शरण लेंगे—यह विचार करो।]

२. सुत्तेसु यावी पडिबुद्धजीवी, न वीससे पंडिये आसुपन्ने।
घोरा मुहुत्ता अबलं सरीरं, भरंडपक्खी व चरऽप्पमत्तो॥
उत्तरा० ४।६

[आशुप्रज्ञ पंडित सोये हुये मनुष्यों के बीच भी जागृत रहे, प्रमाद में विश्वास न करे मूहूर्त (काल) बड़े घोर "निर्दयी" होते हैं। शरीर दुर्बल है। इसलिये भारण्ड पक्षी की भांति अप्रमत होकर विचरण करे।]

३. परिजुरइ ते सरीरयं, केसा पंडुरया हवन्ति ते।
से सोय बले य होइये, समयं गोयम। मापमाथंए॥

—उत्तरा० १०।२१

[तेरा शरीर जीर्ण हो रहा है, बाल सफेद हो रहे हैं और सब प्रकार से बल क्षीण हो रहा है, इसलिये क्षण भर के लिये भी प्रमाद मत कर।]

४. कुसग्गे जह ओस बिण्दुए, थोवं चिट्ठई लम्बमाणिए।
एयं मयुयाण जीवियं, समयं गोयम ! मा पमायए॥

—उत्तरा० १०।२

[जिस प्रकार कुश के अग्रभाग पर ठहरी हुई ओसबिन्दु की अवधि अल्प है, वैसे ही मनुष्य जीवन की अस्थिर गति है। इसलिये हे गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद-मतकर।]

शील के विषय में :

१. एस धम्मे धुवे निग्रए सासए जिणदेसिए।
सिद्धा सिज्झन्ति चाणेण सिज्झिस्सन्ति तहावरे॥

—उत्तरा० १२।१७

[यह ब्रह्मचर्य—धर्म, ध्रुव, नित्य, शाश्वत और अर्हत के द्वारा उपदिष्ट है। इसका पालन कर अनेक जीव सिद्ध हुये हैं, हो रहे हैं और भविष्य में भी होंगे।]

२. लज्जा दया संजम बंभचेरं कल्लाण भामिस्स विसोहिठाणं।
जे मे गुरु सययमणु सासयंति तेहं गुरु सययं पूययामि॥

—दशवै० ६।१।१३

[लज्जा, दया, संयम और ब्रह्मचर्य, कल्याणभागी साधु के लिये विशुद्धता के स्थान हैं। जो गुरु मुझे उनकी सतत् शिक्षा देते हैं, उनकी मैं निरंतर पूजा करता हूं।]

सच्चे साधु/भिक्षु के बारे में :

१. जो सहई गामकंटए, अक्कोस-पहार-तज्जणाओ य ।
भय-भरेव-सद्द-सप्पहासे, समसुह-दुक्खसहे य जे स भिक्खू ।।

—दशवै० १०।११

[जो कांटे के समान चुभने वाले इन्द्रियों के विषयों के उपस्थित होने पर–किसी के क्रोधित होने, तिरस्कार करने, मारने अथवा अपमान करने पर जो शांत भाव से सह लेता है, जिसकी इन्द्रियां अनुद्धत हैं, जो प्रशांत है, जो संयम में ध्रुव योगी है, जो उपशांत है, जो दूसरों को तिरस्कृत नहीं करता, वह भिक्षु है ।]

२. अभिभूय कायेण परी सहाई, समुद्धरे जाइपहाओ अप्पयं ।
विइत्तु जाई-मरणं महब्भयं, तवे रए सामणिये जेस भिक्खू ।।

—दशवै० १०।१४

[जो शरीर के परीषहों को समभाव से सहन कर संसार से अपना उद्धार करता है, जन्म मरण को महाभय जानकर सदा श्रमणोचित तप में रत रहता है, वह भिक्षु है ।]

महाप्रभु महावीर

• श्री रतनलाल संघवी

अपरिमित और अनन्तकाल से मानव-जीवन के विकास के मूल आधार विचार एवं आचार ही रहे हैं। आचार-क्षेत्र के विकास में भी मूल कारण विचार ही होते हैं। इस दृष्टि से महाप्रभु भगवान् महावीर स्वामी ने भारतीय-संस्कृति के आधार-स्तम्भ स्वरूप आचार एवं विचार क्षेत्र में मौलिक, सात्विक और क्रांतिकारी दृष्टिकोण को सर्वस्व त्याग तथा असाधारण दीर्घ तपस्या द्वारा प्रस्तुत करके मानव-जाति की सुख-शांति के लिये अपनी अद्वितीय एवं अमर देन प्रस्तुत की है।

महावीर-युग में धार्मिक, सामाजिक तथा व्यावहारिक क्षेत्रों में विविध विकृतियां तथा जघन्य प्रवृत्तियां प्रवृत्त हो गई थीं। उनका निरूपण क्रम से संक्षेप में यों किया जा सकता है—

१—वैदिक क्रिया-कांडों में धर्म के नाम पर हिंसा का आधिपत्य हो गया था।

२—वर्ण-व्यवस्था ने मानव-मानव में हीनता-उच्चता जैसी दम्भपूर्ण दुर्भावना उत्पन्न कर दी थी।

३—"वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति" नामक मिथ्या सिद्धांत ने मांसाहार का स्पष्ट विधान कर दिया था।

४—शूद्र को निम्न-कोटि के सेवक-वर्ग के रूप में और अछूत के रूप में परिणित कर दिया था।

५—महिला वर्ग को केवल भोग्य-पदार्थ के रूप में ही समझा जाने लगा था।

६—तृष्णा और भोग-लालसा ने भोगमय भौतिक पदार्थों के संग्रह करने की वृत्ति में और उपभोग करने की प्रवृत्तियों में विविध कुत्सित विसंगतियां उत्पन्न कर दी थीं।

७—ईश्वरवाद एवं मोक्षवाद के नाम पर आध्यात्मिक क्षेत्र में विविध संज्ञा वाले अनेक देवी-देवताओं का निर्धारण कर दिया गया था।

८—"सूर्य-पूजा, प्रकृति-पूजा, नाग-पूजा, यक्ष-पूजा एवं कल्पित देव-पूजा" आदि के रूप में मूर्ति-पूजा का प्रचलन हो गया था ।

९—"संसार का कर्ता, हर्ता, धर्ता और नियन्ता" केवल एक ही ईश्वर है, यों ईश्वर-कर्तृत्व नामक भ्रामक सिद्धांत के द्वारा आत्मा की अनन्त शक्तियों को ही भुला दिया गया था ।

१०—इस प्रकार की विकृतियों ने शोषण और स्वार्थ-रोपण को ही प्रश्रय प्रदान करके प्रायः संपूर्ण भारतीय जनता पर अपना अभूतपूर्व वर्चस्व प्रस्थापित कर दिया था ।

उपरोक्त महती विकृतिमय एवं वीभत्स आचरणमय संस्कृति के बीच तीर्थंकर भगवान् महावीर स्वामी ने अपनी आत्मा के बल पर ही सत्य-पूत सात्विकता की और 'अप्पा सो परमप्पा' नामक सर्वोच्च आत्मशक्ति संस्थापक सिद्धांत की परिस्थापना करके भारतीय विचार तथा आचार क्षेत्र में अपनी अभूतपूर्व एवम् अद्वितीय महानता प्रस्तुत की है जो इन चतुर्मुखी सिद्धांतों "अनेकान्तवाद अहिंसावाद, आत्मवाद और अपरिग्रहवाद" के रूप में प्रस्फुटित हुई ।

अनेकान्तवाद निष्क्रिय एवं संशयग्रस्त विचारधारा नहीं है; किन्तु सापेक्ष-स्वरूप वाली होने से यथार्थ तत्त्व निश्चायक दृष्टिकोण है । जीव-अजीवात्मक संपूर्ण लोकालोक में अवस्थित सभी द्रव्य सापेक्ष स्थिति के अंतर्गत ही अपनी स्थिति एवं अपना स्वरूप बनाये हुए हैं; अतः इनका अपना तत्व-निर्धारण एकान्त एक पक्षीय विचारधारा से नहीं हो सकता है; क्योंकि द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव, से विविध संयोगात्मक कारणों के बल पर ही इन लोक व्यापी पदार्थों में पर्याय-परिवर्तन रूप स्थितियां रही हुई हैं और इन्हीं पर्यायों में इनकी अक्षय स्वरूप द्रव्यता, ध्रौव्यता भी कायम है ।

एकान्त एक पक्षीय विचारात्मक शब्दावली पदार्थस्वरूप का वर्णन करने में सर्वथा असमर्थ है । वर्तमान में विकसित विज्ञान ने एवं महान् वैज्ञानिक आइंसटीन ने तथा भारत-सपूत वैज्ञानिक नार्लीकर ने भी सापेक्ष स्वरूप स्थिति पूर्णतया प्रमाणित कर दी है । इस प्रकार "अनेकान्तवाद" के रूप में महाप्रभु महावीर की सर्वथा अनुपम देन है ।

भगवान् महावीर ने मांसाहार को महान् पापमय और जघन्यतम कुकृत्य प्रमाणित करके भारतीय-संस्कृति में अहिंसा को सर्वोच्च और सर्वोत्तम आदर्श ध्येय प्रमाणित किया ।

अनन्तकाल से पाप की ओर प्रवाहित होने वाले हिंसामय प्रवाह को अहिंसा की ओर प्रवाहित कर देना केवल भारतीय-संस्कृति के लिये ही नहीं बल्कि विश्व-

संस्कृति के लिये भी भगवान् महावीर की यह दूसरी देन है; जो कि शब्दों द्वारा अनिर्वचनीय है।

अहिंसा की महिमा और इसकी शक्ति का प्रदर्शन भगवान् महावीर स्वामी ने राज्य, अनुयायियों एवम् लोभ-लालच के बल पर नहीं किया, किन्तु अपने तेज, आत्म-बल और आत्म-त्याग के आधार पर ही प्रस्तुत किया।

सर्वप्रथम भगवान् महावीर स्वामी ने पत्नी, पुत्री, राज्य-प्रासाद आदि भोग साधनों और इन्द्रिय-सुखों को त्याग करके जनसाधारण का ध्यान और उनकी सात्विक श्रद्धा को अपनी ओर आकर्षित किया; तत्पश्चात् तपस्या का, कष्ट-सहिष्णुता का, आहार-भोजन के प्रति निरीहता का, आत्म-दृढ़ता का एवं कषाय-हीनता का इतना स्पष्ट और निर्दोष प्रभाव जनसाधारण पर पड़ा कि वह इनके व्यक्तित्व के प्रति आशाशील, भक्तिशील और पूर्णतया विश्वासशील बन गया।

महात्मा गौतम बुद्ध ने मांसाहार के प्रति उत्सर्ग मार्ग का और अपवाद मार्ग का द्विविध-विधान करके अहिंसा सिद्धान्त के प्रति शिथिलता प्रदर्शित की है; जबकि भगवान् महावीर स्वामी ने मानव-जाति मात्र के लिये स्पष्ट रूप से मांसाहार त्याज्य बतलाया है और इसको एक पाप-प्रवृत्ति घोषित की। यों 'अहिंसा' के इतिहास में भगवान् महावीर ने स्पष्ट रूप से तथा असाधारण रूप से क्रांति ही प्रस्तुत की है।

बौद्ध-धर्म लोक-कल्याण प्रधान भावना पर आश्रित है। जबकि महाप्रभु महावीर द्वारा प्रस्तुत धर्म आत्म-कल्याण प्रधान भावना पर संस्थापित है। आत्म-कल्याण प्रधान धर्म में संवर प्रवृत्ति एवं निर्जरा प्रवृत्ति की बहुलता होती है; किन्तु लोक कल्याण प्रधान धर्म में केवल बाह्य नैतिक विधि-विधानों का ही अस्तित्व होता है। इसी पारस्परिक अन्तर से भगवान् महावीर द्वारा प्रतिपादित अहिंसा को अधिक सुदृढ़ और सर्वथा निर्मल स्वरूप प्रदान किया। इसी का परिणाम है कि—"भारतीय धर्ममय संस्कृति का आधार स्तम्भ ही 'अहिंसा' प्रमाणित हुआ और धार्मिक विद्वेषमय आंधियाँ आने तथा अनेक राजनैतिक आक्रमण होने पर भी अहिंसा-सिद्धांत अविचलित और पूर्ण सत्य साबित हुआ। यह सब भगवान् महावीर स्वामी की महानता का ही पुनीत परिणाम है।

वेद-आश्रित संस्कृति की मान्यता है कि—'ईश्वर ही विश्व-विधाता है, वह एक है और सभी जीवों के पाप-पुण्यों का वह नियन्ता है, वह कर्ता-हर्ता और धर्ता है।' इस वैदिक सिद्धान्त ने जनसाधारण के ज्ञान एवं मानस-पटल पर तथा आत्मा की अनन्त शक्तियों पर पर्दा डाल दिया था; आत्म-शक्तियों से तथा आत्म-पुरुषार्थ से जनता को निरपेक्ष-सा कर दिया था; आत्मा की मूलभूत शक्तियों को जड़ तुल्य तथा अकर्मण्य बना दिया था और कर्म-कांडी वर्ग समाज का स्वयंभू नेता तथा स्वयंभू प्रतिनिधि बन बैठा था। ऐसी विकृत स्थिति में भगवान् महावीर स्वामी

ने इस एकांगी ईश्वर कल्पना के विरोध में अपनी आत्म-शक्ति की महती तेजस्विता को प्रत्यक्ष रूप से प्रदर्शित करके शांत और संयत विद्रोह की उद्घोषणा की और "आत्म-तत्व" के संबंध में यह आदर्श सैद्धांतिक मान्यता प्रस्तुत की कि—"प्रत्येक आत्मा, चाहे वह एकेन्द्रिय रूप हो अथवा पंचेन्द्रिय रूप हो, नर हो अथवा तिर्यंच हो, ऐसा प्रत्येक जीव-तत्व पूर्ण ईश्वरत्व शक्ति से संपन्न है। प्रत्येक संसारी आत्मा अपने श्रेष्ठ और सात्विक पुरुषार्थ के बल पर पूर्ण ईश्वरत्व की प्राप्ति कर सकता है।"

सभी आत्मा समान गुणों वाली और समान शक्ति वाली हैं; अतएव वर्ण-व्यवस्था ढोंग है, शूद्र और महिला-वर्ग को हीन समझना मूर्खता की पराकाष्ठा है, तथा विश्व का कर्ता ईश्वर है, यह मान्यता भी विचार-जड़ता को ही सूचित करती है एवं मूर्ति की पूजा कर के उसको देव समझना भी विचार-शून्यता ही है। ये मत-अन्धतायें आत्म-शक्ति को नहीं समझ सकने के कारण से उत्पन्न हुई हैं। अतः योगीश्वर भगवान् महावीर स्वामी ने अपनी आत्म-शक्ति का प्रचंड प्रकाश केवल त्याग और तपस्या द्वारा प्रदर्शित करके यह समझाया कि—"आत्मा ही ईश्वर है और उस इश्वरत्व को स्वयमेव पुरुषार्थ द्वारा अपने में प्रकट किया जा सकता है।" यही मानव-संस्कृति के लिये भगवान् महावीर स्वामी की तृतीय महान् देन है।

'अपरिग्रहवाद' नामक चौथी देन के संबंध में इतना ही लिखना पर्याप्त होगा कि—यदि मानव समाज में सुख-शान्ति का साम्राज्य कायम करना है तो तृष्णा की विशालता पर नियन्त्रण करना होगा और विषम रूप में विद्यमान धन एवं धरती का समान रूप में वितरण व्यवस्थापूर्वक करना होगा।

इस प्रकार से भगवान् महावीर की ये प्ररूपणायें विश्व-शांति तथा विश्व-कल्याण के लिये अभूतपूर्व तथा अनुपम हैं। यही भगवान् की महाप्रभुता है। तथास्तु।
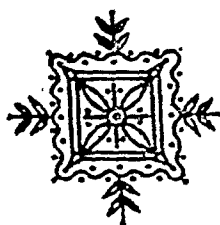
वाक्य-दीप

[जिस प्रकार सागर में दीप स्तम्भ जहाजों को उनके लक्ष्य तक पहुंचने में सहायता देते हैं, उसी तरह वीर प्रभु के निम्नांकित उद्घोषित कथन प्रत्येक मानव को कुछ समझने, करने की प्रेरणा करते हैं। आइये, हम इन विचारों को दीपस्तम्भ की तरह मानें और इनसे जीवन में दिशा-निदेश प्राप्त करें।]

—संपादक

∵ धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगल है। धर्म का अर्थ है—अहिंसा, संयम और तप। जिस मनुष्य का मन सदा धर्म में रमा रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

∴ धर्म ही जलाशय है और ब्रह्मचर्य ही शांतिदायक तीर्थ है। उसमें स्नान करने से आत्मा निर्मल और शांत होती है। सुबह शाम स्नान करने से ही यदि मोक्ष मिलता है, तो जलचर को शीघ्र ही मोक्ष मिलना चाहिये।

∵ सांसारिक सुख या काम भोग जन्य सुख—सुख नहीं, किन्तु दुःख है। जिसका पर्यवसान दुःख में हो, वह सुख कैसा ? काम से विरक्ति में जो सुख मिलता है वह स्थायी है, वही उपादेय है। सब काम विष-रूप हैं, शल्य-रूप हैं।

∴ देवताओं सहित समस्त संसार के दुःखों का मूल एकमात्र काम भोगों की वासना ही है। काम भोगों के प्रति निस्पृह मानव शारीरिक तथा मानसिक सभी प्रकार के दुःखों से छूट जाता है। जैसे कछुआ खतरे की जगह अपने अंगों को अपने शरीर में सिकोड़ लेता है, उसी प्रकार ज्ञानी जन भी विषयाभिमुख इन्द्रियों को आत्म-ज्ञान से सिकोड़ कर रखें।

∵ जो अपनी सम्पत्ति में आसक्त नहीं, किसी इष्टवियोग में शोकाकुल नहीं, तप्त स्वर्ण की भांति निर्मल है, रागद्वेष और भय से रहित है, तपस्वी और त्यागी है, सब जीवों में समभाव को धारण करता है, क्रोध, लोभ, हास्य

और भय के कारण असत्यभाषी नहीं है, चोरी नहीं करता, मन-वचन और काया से संयत है—ब्रह्मचारी है—अकिंचन है—वही सच्चा ब्राह्मण है। ऐसे ब्राह्मण के सान्निध्य में रहकर अपनी आत्मा का चिन्तन, मनन और निदिध्यासन करके उसका साक्षात्कार करो। यही भक्ति है—यही पूजा है।

∴ जीव हिंसा का त्याग, चोरी, झूठ और असंयम का त्याग, स्त्री, मान और माया का त्याग, इस जीवन की आकांक्षा का त्याग, शरीर के ममत्व का भी त्याग—इस प्रकार सभी बुराइयों को जो त्याग देता है—वहीं महात्यागी है।

∵ हिंसा से तो प्रति हिंसा को उत्तेजना मिलती है, लोगों में परस्पर शत्रुता बढ़ती है और सुख की कोई आशा नहीं। सुख चाहते हो तो सब जीवों से मैत्री करो, प्रेम करो, सब दुःखी जीवों पर करुणा रखो। ईश्वर में और देवों में यह सामर्थ्य नहीं कि वे तुम्हें सुख या दुःख दे सकें। तुम्हारे कर्म ही तुम्हें सुखी और दुःखी करते हैं। अच्छा कर्म करो, अच्छा फल पाओ और बुरा करके बुरा नतीजा भुगतने के लिये तैयार रहो। ईश्वर या देव वह तो तुम्हीं हो।

∴ तुम्हारे में अनन्त शक्ति, अनन्त ज्ञान और अनन्त सुख प्रच्छन्न हैं। उनका आविर्भाव करके तुम्हीं ईश्वर हो जाओ। फिर तुममें और मुझमें, कोई भेद नहीं है। भक्ति या पूजा करना है तो अपनी आत्मा की करो। उसे राग और द्वेष, मोह और माया, तृष्णा और भय से मुक्त करो इससे बढ़कर कोई पूजा, कोई भक्ति श्रेष्ठ हो नहीं सकती।

∵ परस्पर झगड़ते क्यों हो? परस्पर टकराते क्यों हो? सत्य एक नहीं—अनन्त हैं। खण्डित नहीं—अखण्डित हैं। उसे एक मानना और खण्डित समझना—बस यही भ्रम है। इसी के कारण संघर्ष और कलह समुत्थित होते हैं।

∴ धर्म का नाम लेकर मनुष्य जाति में ऊंच और नीच की भावना पैदा करना, सत्य का गला घोंटना है। समस्त मानव जाति एक है। सबका शरीर पृथ्वी आदि पुद्गलों से निर्मित हैं। सब में एक जैसी आत्मा है। प्रकृति के तत्त्वों का सभी समान उपभोग करते हैं। अतः मनुष्य जाति अखण्ड है। उसमें वर्ग विभाग की कल्पना अनुचित है। जातीयता का घमंड जीवन का सर्वतो-मुखी विनाश करता है।

पशु-बलि या नरबलि से देवता प्रसन्न होते हैं, यह भ्रांत धारणा है। किसी के जीवन लुट जाने पर प्रसन्न होने वाला देवता तो क्या, सच्चा मनुष्य भी नहीं कहला सकता। किसी के जीवन को नष्ट करना अन्याय है, अत्याचार है। हिंसा कभी स्वर्ग नहीं दे सकती, यह मानवता का सबसे बड़ा अभिशाप है।

प्रत्येक व्यक्ति सत्य और अहिंसा के शुद्ध आचरण से अपने जीवन को उन्नति के शिखर पर ले जा सकता है। आध्यात्मिक उन्नति के द्वार सबके लिये खुले हैं। इसका किसी जाति या वर्ण से कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता।

मेरी भक्ति का यह अर्थ नहीं है कि मेरा नाम रटा जाय, मेरी पूजा अर्चना की जाय। मेरी भक्ति मेरी आज्ञा के पालन में है और मेरी आज्ञा है— प्राणी मात्र को सुख सुविधा और शांति पहुँचाना।
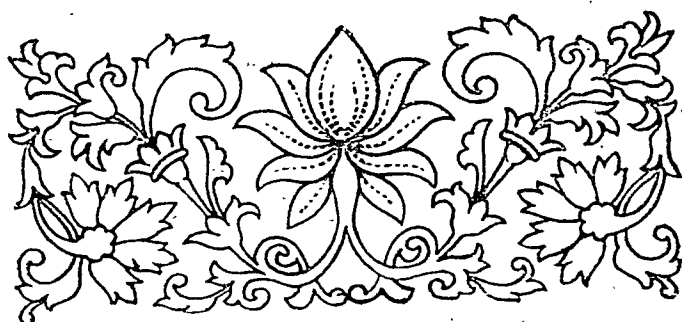
आदर्श गृहस्थ जीवन की झांकी

• सागरमल जैन, एम. ए., बी.-एड.

सम्यक्-दर्शन, सम्यक्-ज्ञान और सम्यक्-चरित्र का एक साथ पालन ही मोक्ष मार्ग की आराधना है। सम्यक्-दर्शन और सम्यक्-ज्ञान के अनुरूप चरित्र पालन न हो तो कथनी और करनी में अन्तर रह जायगा। करनी और कथनी के अन्तर को मिटाने का प्रयत्न ही साधना है। आचरण के अभाव में ज्ञान थोथा और दर्शन पंगु रह जाता है। दर्शन, ज्ञान व चरित्र की एकरूपता साधने के लिये ही जैन गृहस्थ और जैन साधुओं की पृथक-पृथक बड़ी व्यवस्थित और व्यापक आचारसंहिताएं हैं जिन्हें गृहस्थ आचार यानी सागर धर्म और मुनि आचार अर्थात् अणगार धर्म कहा जाता है।

पवित्र वातावरण बनाकर, उसे शाश्वत रखने और मन को उसी में रमाने के लिए जैन गृहस्थ अपना दिन प्रारम्भ करता है—

ब्राह्मे मुहूर्त्त उत्थाय, व्रत पंच नमस्कृति,
कोऽरं, को ममधर्मो, किव्रत चेति पतमर्शेत्।

ब्राह्म मुहूर्त्त में उठना, नवकार मन्त्र का ध्यान, मैं कौन हूं, मेरा धर्म क्या है, व्रत क्या है आदि का चिन्तन उसे सामान्य धरातल से उठाकर उच्च दार्शनिक भूमि पर ले जाते हैं। इस स्थिति को सुदृढ एवम् स्थाई बनाने के लिए वह तीन मनोरथों का चिन्तन करता है—

(१) हे प्रभु : मैं कब आरम्भ और परिग्रह का त्याग करूंगा? आरम्भ का अर्थ है सांसारिक क्रिया व्यापार और परिग्रह का अर्थ है सांसारिक संपदा, धन, पुत्र, परिवार आदि के प्रति ममत्व।

(२) हे प्रभु! मैं कब वृती-श्रावक बन महाव्रतधारी साधू बनूंगा।

(३) हे प्रभु! वह शुभ दिन कब आयेगा जब अन्तिम समय में सभी पापों का त्याग कर निःशल्य होकर, चारों प्रकार के आहार का त्याग कर धर्म ध्यान ...ता हुआ देह विसर्जन करूंगा।

और उसके मन में विचार आते रहते हैं—

सर्वज्ञ देव की सेवा करने के, शास्त्र स्वाध्याय के, तत्व विचार के। संयम में उसकी अभिरुचि होती है, सम्यकत्व की आराधना करता हुआ वह पाप कर्मों का कम करता जाता है। जीव दया और प्रभु, कृपा ये दो उसकी कामनायें होती हैं। आचरण की भूमि पर उसका कार्य क्षेत्र इस प्रेमवर्क में बंधा रहता है—

न्यायोपात्त धनोयजन गुण गुरुन्
लन्योगुणम् तपह गृहिणी स्थानालयो ही मय;
युक्ताहार विहार आर्य समिति प्रज्ञः कृत्तज्ञोवी,
श्रणवन् धर्म विधि दयालु रघाभिः सागार धर्ममा चरेत् ॥

वह नीति पूर्वक अपनी आजीविका उपार्जित करता है, ज्ञानवान् पुरुषों का आदर करता है। सद्गृहस्थ होता है, धर्म, अर्थ के साथ काम पुरुषार्थ की आराधना भी करता है, उचित आहार-विहार के साथ उसका आवास, स्थान, पत्नी आदि लज्जावान होते हैं। वह उत्तम कार्य करने वाला होता है, बुद्धिमान् होता है, कृतज्ञ और संयमी होता है। ऐसा पापों से डरने वाला, दयालु, धर्मश्रवण करने वाला पुरुप सागर धर्म का आराधक होता है।

प्रथम सीढ़ी के रूप में जैन गृहस्थ सात व्यसनों का त्याग करता है, व्यसन आदमी की बुरी आदतें हैं :—जुआ खेलना, शराव पीना, मांस खाना, वैश्यागमन करना, शिकार खेलना, पर स्त्रीगमन एवम् चोरी करना। आगे चलकर मूल गुणधारी श्रावक वनने पर गृहस्थ अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और परिग्रह परिमाण व्रतों का स्थूलरूप से पालन करता है। इनके साथ ही पांच उपंवर फलों का (बड़, पीपल, पाकर, उमर, कठूमर) भी त्याग करता है। रात्रि भोजन त्याग और पानी छानकर पीना, ये नियम प्रायः जैनियों में सर्वत्र व्यापक है। कहीं-कहीं तो सूर्योदय के वाद भोजन न करना और विना छाना पानी न पीना जैनियों की पहचान वन गई है। अहिंसा पालन और जीव रक्षा की दृष्टि से ये अनिवार्य हैं।

तपस्या निर्जरा का प्रमुख साधन है। आभ्यन्तर तप श्रेष्ठ होते हुए भी 'वाह्यतप' की जैनियों में व्यापकता है। अनशन, आयंविल, एकासन, अवमोपर्य—भूख से कम खाना, रस परित्याग आदि का जैन घरों में प्रचुर प्रसार है। अनशन की ओर उन्मुख होने के लिए सूर्योदय के पश्चात् आधे प्रहर, एक प्रहर, दो प्रहर या तीन प्रहर के वाद ही भोजन करना तपस्या के ही विविध रूप हैं।

सामायिक, देवदर्शन, वन्दन-पूजन, स्वाध्याय, प्रतिक्रमण, ये जैनियों की दैनिक आवश्यक क्रियाओं में से हैं। एक प्रहर के लिए सांसारिक क्रिया व्यापार से निवृत्त होकर सम की स्थिति में रहना सामायिक है। मानसिक उद्विग्नता का शमन कर,

सामायिक में मनुष्य 'ज्ञानी' की अपूर्व स्थिति में रहता है। मन्दिर में जाकर देव-दर्शन, वन्दन-पूजन करना, मूर्ति पूजक समाज के संस्कारों का प्रमुख अंग है। धर्म ग्रन्थों का वाचन तथा उन पर आपसी चर्चा स्वाध्याय है। प्रतिक्रमण में गृहस्थ उपाश्रय में अथवा घर पर अंगीकृत श्रावक के १२ व्रतों में लगे हुए दोषों की प्रत्यालोचना करता है तथा यदि व्रत धारण न किये हों तो उन्हें धारण करने की भावना रखता है। यह क्रिया प्रायः सायं की जाती है जिसमें करीब १ घण्टा लगता है तथा जिसकी निश्चित विधि एवम् निश्चित पाठ है। सामायिक प्रतिक्रमण के समय ही गृहस्थ १४ नियमों का चिन्तन करते हुए उनकी दैनिक मर्यादा निश्चित कर लेता है। ये नियम हैं—संचित पदार्थों का भोग, द्रव्य का भोग, विगय (सरस पदार्थ) भोग, उपानह, तांबूल, वस्त्र, कुसुम, वाहन, शय्या, सौन्दर्य प्रसाधन की सामग्री आदि के उपयोग की मर्यादा। ब्रह्मचर्य, दसों दिशाओं में गमनागमन की मर्यादा, स्नान-भोजन आदि की सीमा बांधना।

व्रत और नियमों का बार-बार का यह चिन्तन उसे अपने इष्ट मार्ग पर दृढ़ रखता है। सांस्कृतिक ह्रास के युग में इन नियमों का जितना अधिक पालन किया जाय उतना ही व्यक्ति सुखी एवम् स्वस्थ होगा तथा सामाजिक व्यवस्था भी उत्तम बनी रह सकेगी, यह चिरन्तन सत्य है।
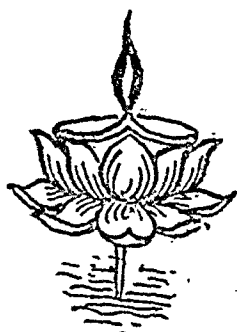
पाश्चात्य विद्वानों की दृष्टि में

(एक संकलन)

[जैन समाज का प्रत्येक नर-नारी भगवान् महावीर के प्रति अगाध श्रद्धा एवं विश्वास रखता है जो स्वाभाविक है पर भौतिक सुखों में रमे हुये पाश्चात्य जगत् के नर-नारी इस महान् आत्मा के प्रति कैसी भावना रखते हैं, यह जानना भी समाचीन होगा।]

१. डॉ० वाल्टर शुब्रिंग—जर्मनी

संसार सागर में डूबते हुये मानवों ने अपने उद्धार के लिये पुकारा। इसका उत्तर श्री महावीर ने जीव के उद्धार का मार्ग बतलाकर दिया। दुनिया में ऐक्य और शांति चाहने वालों का ध्यान श्री महावीर की उदार शिक्षा की ओर आकृष्ट हुये बिना नहीं रह सकता।

२. श्रीमती जोजेफ मेरीवान—जर्मनी

महावीर स्वामी ने अपने ज्ञान और अहिंसा के सिद्धान्त से संसार की भौतिकवादी आस्था और नीति को नष्ट कर दिया। हम उन्हें प्रथम कोटि का महामानव कहते हैं।

३. श्री हरडर—जर्मनी

भगवान् महावीर ने विश्व का कल्याण किया और अपनी आत्मा पर विजय पाई—इसलिये वह विश्व विजेता था।

४. डॉ० विलियम हेनीर टाल्वाट—इंग्लैण्ड

भगवान् महावीर का नाम और अहिंसा संस्कृति, अकथनीय शांति, बीज वर्गणाओं से सम्बद्ध अगाध सुख से परिपूर्ण है। हे वर्धमान! आप पवित्र, महा पवित्र हैं। आपकी विजय का उदाहरण वह परिणाम है जिससे कि मानव समाज ही क्या, सम्पूर्ण संसारी जीव लाभ ले सके।

५. **डॉ० फैलिक्स वाल्मी—हंगरी**

मनोविज्ञान की दृष्टि से भगवान् महावीर की विशेषताओं में सर्वाधिक आकर्षित करने वाली बात उनकी अद्भुत आत्म-शक्ति है जो कि मानव-विचार-सरणि के इतिहास की सबसे महत्त्वपूर्ण शताब्दी में उनके जीवन की प्रत्येक प्रक्रिया को विशिष्टता प्रदान करती है।

६. **श्री टॉमस एच० लारेंस—लीवरपूल (इंग्लैण्ड)**

महावीर स्वामी की सर्वभौम प्रेम की शिक्षायें विश्व में चमकेंगी और विश्व का शासन करेंगी जो बलपूर्वक उद्घोष करती हैं कि अपने आप से युद्ध करो—बाहरी शत्रुओं से क्यों लड़ते हो ? जो अपने आपको विजय करता है वह अनन्त आनन्द को प्राप्त करेगा।

७. **प्रो० एम० विएटर विज—चेकोस्लोवाकिया**

मेरे विचार से भगवान् महावीर के धर्म की चरम विशेषता है कि इसने संसार के और किसी विश्वास की अपेक्षा अहिंसा के ऊपर अधिक बल दिया है। इससे भी अधिक यह है कि जैन धर्म के बहुत प्राचीन इतिहास में न केवल अहिंसा को सिखाया गया है—बल्कि उसे व्यवहार में लाया गया है और इसमें हिंसा को कोई स्थान नहीं है। कामना है कि जैन-धर्मानुयायी अहिंसा—जिसका आशय कायरता नहीं अपितु शांति के प्रति साहसिक वृत्ति है—को समस्त विश्व में फैलाते रहें।

८. **प्रो० डॉ० एस० मात्सुनामी—जापान**

महावीर स्वामी के समय में श्रमण आन्दोलन की शक्ति धार्मिक तथा दार्शनिक विचार सरणि की अपेक्षा आध्यात्मिक जीवन पर अधिक केन्द्रित रही।

आर्थिक असमानता और अपरिग्रहवाद

• दिलीप जैन

चुनावों के समय समाजवाद के नारे का राजनीतिक ध्येय कुछ भी हो लेकिन यह प्रश्न अवश्य चिन्तनीय है कि अन्ततः इस नारे की आवश्यकता क्यों हुई ? क्यों नहीं पूंजीवाद की निर्वाध नीति को निरन्तर रखा गया ? मात्र इसलिये कि इससे निर्धनता और धनिकता की खाई अधिक गहरी होती चली गयी थी। रूस की खूनी क्रान्ति और तदुपरान्त साम्यवादी विचारधारा के उद्भव की पृष्ठ-भूमि में पूंजीवाद का यही महत्तम अवगुण निहित था। जब साम्यवादी विचारधारा भी अपने ध्येय में पर्याप्त सफलता प्राप्त नहीं कर पायी तो राजनीतिक खेमों से समाजवाद का नारा दिया जाने लगा। इस प्रक्रिया के गर्भ में राजनीतिक स्टण्ट जो भी हो किन्तु यह निर्विवाद सत्य है कि आज का चिन्तनशील अर्थशास्त्री गगनचुम्बी इमारतों और घासफूस की अधूरी छतों के महान् अन्तर से चिन्तित अवश्य है। अमीरों की अट्टालिकाएँ गरीबों की विवशता का अट्टहास सी करती प्रतीत होती हैं। भारत में ही जहाँ एक ओर चन्द धनिकों द्वारा एश्वर्य और विलासिता पर पानी की भाँति पैसा बहाया जा रहा है वहीं दूसरी ओर देश की करोड़ों जनता गरीबी रेखा से नीचे (under poverty line) जीवन यापन कर रही है। जिन्हें जठराग्नि शान्त करने को २ जून का भोजन उपलब्ध नहीं है, तन ढकने को पूरे वस्त्र नहीं मिलते, सर छुपाने को मकान नहीं दीखता। आज का धनी, धनीतर होता जा रहा है और निर्धनता सुरा की बाढ़ सी बढ़ती जा रही है। स्व० रामधारीसिंह दिनकर के शब्दों में :—

विद्युत् की इस चकाचौंध को देख, दीप की लौ रोती है।
अरी, हृदय को थाम, महल के लिये झोपड़ी बलि होती है।।

इस वर्तमान विषय परिस्थिति में आज का प्रत्येक बुद्धिजीवी आर्थिक असमानता की खाई पाटने के उपरकरणों को खोजने में व्यस्त सा प्रतीत होता है। आइये, हम यह विचार करें कि अपरिग्रहवाद किस भांति अन्य कतिपय उपकरणों का विकल्प सिद्ध हो सकता है।

विषय की विस्तृत विवेचना से पूर्व यह अनावश्यक न होगा—यदि हम अपरिग्रहवाद का स्पष्ट अर्थ आंक लें। सीधे शब्दों में अपरिग्रह का अर्थ है अनुपयोगी

वस्तुओं का निरर्थक संग्रह न हो। दूसरे शब्दों में परिग्रह को "जमाखोरी" की संज्ञा दी जा सकती है। यहाँ प्रश्न यह है कि आवश्यकताओं की ऐसी कौनसी लक्ष्मण रेखा है, जिसके अन्तर्गत यह परिभाषित किया जा सके कि उक्त परिमाण से अधिक वस्तुओं का संग्रह परिग्रह कहलाता है। वर्तमान भौतिकवादी युग में प्रत्येक व्यक्ति एवं वर्ग की आवश्यकताएँ विभिन्न हैं। जो परिमाण किसी वर्ग विशेष के लिये विलासी कहलाए वही दूसरे वर्ग के लिये अनिवार्य कहलाता है। साथ ही यह भी सम्भव नहीं कि जन समग्र संन्यासी बन कर रहे। इन विरोधाभासों में उलझी परिग्रह प्रवृत्ति की परिसीमा पर एक प्रश्न चिह्न लग जाता है।

यहाँ मैं तीर्थंकर महावीर के अधोलिखित कथन उद्धृत करना चाहूंगा। गौतम गणधर की इसी भांति की एक शंका का समाधान करते हुए प्रभु ने कहा था—"प्रत्येक व्यक्ति उतनी ही वस्तुओं का संग्रह करे जिनसे उसकी आधारभूत आवश्यकताओं की परिपूर्णता सम्भव हो सके।" जहाँ तक तत्सम्बन्धी आवश्यकताओं की परिपूर्ति का प्रश्न है संग्रह की उपयुक्त सीमा अयुक्तिसंगत नहीं। लेकिन संग्रह का अतिरेक व्यक्ति की लालची एवं लोभी प्रवृत्ति का द्योतक है। आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का संग्रह, संग्रह-प्रवृत्ति को वृद्धितर करता है, तथा वृद्धिगत परिग्रह की अतृप्त पिपासा हमारी सुसुप्त दुष्प्रवृत्तियों को सजग एवं सक्रिय करती है। इसी अनुक्रम में विवश वर्ग का शोषण किया जाता है। ध्येय एकमात्र यही होता है कि येन-केन प्रकारेण अधिकाधिक धन संग्रह किया जाय। तदनुसार महलों और कुटियाओं के मध्य अन्तर क्रमशः बढ़ता चला जाता है और दूसरी ओर निर्धनों की बेबसी पर मगरमच्छी आँसू गिराये जाते हैं।

वस्तुतः वसुन्धरा पर धन धान्य का किंचित भी अभाव नहीं है, स्वयं हमारे देश में अन्न का अतुल उत्पादन होता है। लेकिन, धन की अतृप्त पिपासा से अनुपीड़ित व्यापारी वर्ग अन्न का अनावश्यक संग्रह कर कृत्रिम अभाव उत्पन्न कर देता है। अभाव का अर्थशास्त्र उर्ध्वगामी मूल्यों का अनुसरण करता है। वर्तमान खाद्यान्न संकट ऐसी ही प्रक्रिया की प्रतिक्रिया मात्र है। खाद्यान्न ही नहीं समस्त उच्चतर मूल्यित वस्तुओं का यही इतिहास रहा है। धनिकों के इस दमन चक्र में एक ही वर्ग पिसता चला जाता है। वह है निर्धन वर्ग। इस भांति आर्थिक असमानता की अपाट्य खाई गहरी होती चली जाती है।

अनन्तः यदि हम सही अर्थों में आर्थिक असमानता की वृद्धि तर समस्या का निदान चाहते हैं तो हमें अवश्यमेव आत्मसंयम से काम लेना होगा। अपनी लालसाओं को हम कम न भी कर पायें तथापि इनकी तीव्रतर वृद्धि दर को तो नियन्त्रित करना ही होगा। और भी स्पष्ट शब्दों में कहूं तो अपरिग्रही बनना होगा। तब ही असमानता की इस आर्थिक महामारी का स्थायी समाधान सम्भव हो सकता है। □

सर्वज्ञ महावीर

• पं० उदय जैन

वर्द्धमान महावीर में उत्पत्ति रूप विभूति थी, जो बाल्यकाल और युवा अवस्था तक केवलज्ञान के पूर्व दुनिया में बिखरती रही। तीर्थंकर महावीर केवल-ज्ञान की प्राप्ति के बाद की विभूति थी, जो तीर्थ स्थापन और वर्धन में प्रसरित हो, भव्य जीवों की उद्धारक बनी। यह विभूति भारत के कोने-कोने में फैली और संघ व्यवस्था रूप में संगठित हुई। अनेक गणधर हुए, उपाध्याय हुए और हजारों साधु-साध्वी बने। इसी तरह लाखों की तादाद में श्रावक-श्राविकायें बनी। करोड़ों की संख्या में अहिंसक संघानुयायी वीर भक्त बने, सम्यक्त्वी बने, देशव्रती बने, अणुव्रती बने। संघ की छत्र-छाया में महावीर के आज्ञानुवर्ती बने और श्रमोपासक बने। यह विभूति तीर्थंकर महावीर रूप में वृद्धिगत हुई। इस तरह इसी अवस्था में सर्वज्ञ और सर्वदर्शी बने।

वर्द्धमान अवस्था की उत्पत्ति और तीर्थंकर अवस्था का व्ययनाश तथा सर्वज्ञ अवस्था की कायमी। इसे उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य की त्रिपदी रूप विभूति एवं वर्द्धमान, तीर्थंकर एवं सर्वज्ञ रूप में सत् की व्यवस्था ही महावीर की पूर्णता, अखण्डता एवं शाश्वत होने, कायम रहने तथा विभूतिमय बन जाने का द्योतक है। सर्वज्ञत्व आत्म विभुति का ध्रौव्य प्रकाश है जो सिद्धावस्था में कायम है। सिद्ध अवस्था ही पूर्णत्व का प्रकाश है। यही वीर विभूति की अनन्तता, दिव्यता, शाश्वतता एवं आनन्द की रमणता की असीम कहानी का प्रतिफल या सफलता का प्रतीक सिद्धत्व की अमरता है।

वर्द्धमान, वीर, अतिवीर, सन्मति और महावीर—ये सर्वज्ञ महावीर की विभूति के परिचायक नाम हैं। इन सब नामों में वीर-विभूति का असीम भण्डार भरा हुआ है। सर्वज्ञ महावीर अथवा सन्मति महावीर कुछ भी कहें या वर्द्धमान, वीर और अतिवीर कहें, सभी शब्द सर्वज्ञ महावीर की अखण्डता का परिचायक हैं। मानव शरीर के ये पांचों नाम पांचों विशेषताओं को जताने वाले थे और मानव देह से निर्माण होने पर मुक्त अव[illegible] पांचों नाम उपयुक्त लगते हैं। नाम कर्म का नाश कर वीर ने सिद्धत्व [illegible] था। जिस कारण इस देह को धारण

की उस कार्य की सफलता प्राप्त करली थी। सफलता प्राप्ति के बाद भी आज तक जो ऐश्वर्य आत्म प्रकाशमय और सन्मति प्रचार—सूत्रादि ज्ञान रूप जगत् में विद्यमान है, उसे ही हम 'सर्वज्ञ महावीर' पदों से अलंकृत करते हैं।

वे (महावीर) सिद्धावस्था में अनन्त ज्ञान, दर्शन, वीर्य, क्षायिक सम्यक्त्व अटल, अवगाह आदि आठ गुणों से सदा वर्द्धमान हैं। आठ गुणों से वीर हैं। अति वीर भी इन्हीं गुणों से वने और सर्वज्ञत्व में रमण करने से सन्मति भी कहलाते हैं। महावीर स्वयं सिद्ध होने से प्रशस्त हैं। दुनिया में एक युद्ध को जीतकर वीर चक्र प्राप्त करता है, वह वीर कहलाता है। लेकिन जिस महान् व्यक्ति ने आत्मा पर विजय पाई, कर्म शत्रुओं पर विजय पाई, कषायों से मुक्ति प्राप्त की और सब देवों और मानवों से उच्चगति और स्थिति मुक्ति लक्षण का वरण किया। अतः वे सदा के लिये महावीर वन गये। उनके वरावर कोई वीर नहीं, कोई सुभट नहीं, कोई पुरुषोत्तम नहीं, कोई महात्मा नहीं और कोई अवतार नहीं। वे परमात्मा वन गये अतः महावीर हो गये।

ये पांचों गुण प्रधान नामों की धारक सिद्धात्मा सर्वज्ञ महावीर है। उनका वर्णन करना लेखनी से परे है। लेकिन उनकी ज्ञान दर्शन विभूति जो दुनिया में वर्तमान है उनका वर्णन भी सर्वज्ञ महावीर का वर्णन करना है। दो अवस्थाएँ सशरीर परमात्मा की थी, सदेह महात्मा की थी। सदेह तीर्थंकर की थी। सदेह राजकुमार और ध्यानमौनी वीर-विभूति की थी। सर्वज्ञ वनकर जो ज्ञान व दर्शन दुनिया को दिया, वह अव भी अल्पांश में सूत्र ग्रथित वायु से गुंजित विश्व में प्रसरा हुआ है या आगमों में, ग्रन्थों में, शास्त्रों में, पुस्तकों में अथवा श्रुत (सुनने-जानने में) जगत् में विस्तार पाया हुआ है। उसी की जानकारी से सिद्ध महावीर की विभूति का ज्ञान विश्व में, विश्व के मुमुक्षुओं में और विश्व के क्षुत प्रिय मानवों में अपनी तुच्छ प्रज्ञा से देने का प्रयत्न करना सर्वज्ञ महावीर का वर्णन करने की कोशिश करना है।

सर्वज्ञ शब्द प्रशस्त है। सर्वदर्शी गुण भी 'सर्वज्ञ' में समाया हुआ है। सर्वज्ञ शब्द से धर्म क्रियाओं के उपदेश और आचार वोध भी हो जाता है। सर्वज्ञ शब्द विज्ञान की जानकारी देने में समर्थ है। अतः सर्वज्ञ महावीर खण्ड में ज्ञान, दर्शन, चारित्र, संस्कृति, धर्म और विज्ञान का वर्णन करना संयोजित कर लिया गया है। तत्व दर्शन भी सर्वज्ञत्व का अंश है। लोक विज्ञान भी सर्वज्ञत्व का परिचायक है। अनेकान्त सिद्धान्त से जो भी उपघाटित होता है वह अनन्तता का वोध देना है। अनन्तता का वोध देने वाला सर्वज्ञता का परिचायक है। अतः सर्वज्ञ महावीर सर्वकाल में शाश्वत हैं। उनका वर्णन करने से वीर विभूति की पूर्णता होगी।

....

भगवान् महावीर के शासन में नारी को स्थान

• केशरी किशोर नलवाया
वी.ए., साहित्यरत्न
पुस्तकालयाध्यक्ष,
श्री गोदावत जैन हायर सैकण्डरी स्कूल,
छोटी सादड़ी

नर और मादा (नारी) चाहे वे किसी भी योनि में क्यों न हों, पुरुष पौरुष का प्रतीक है और नारी दया, करुणा और ममता की प्रतिमूर्ति है। दोनों इस विश्व रूपी रथ के समान पहिये हैं जिनके सहारे संसार का रथ गतिमान है।

यह कहना या सोचना कि नारी विना पुरुष की कृपा के अपना जीवन यापन सुख-सुविधापूर्वक नहीं चला सकती, नारी के साथ अन्याय करना है। नर और नारी दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। पुरुष के विना नारी और नारी विना पुरुष की कल्पना करना नितांत असत्य है।

जब कभी पुरुष निराश, हताश और असहाय होकर अपना धैर्य खो बैठता है, कि कर्त्तव्य-विमूढ़ होकर अपने कर्त्तव्य को भूल बैठता है तब नारी ही उसे ढाढस बंधाती है, सम्बल प्रदान करती है। अपने कर्त्तव्य के प्रति सचेष्ट करती है। संसार के कर्म-क्षेत्र में ही ये बातें सत्य हैं ऐसी बात नहीं, आत्म विकास के मार्ग में भी यह बात उतनी ही सत्य है। भगवान् नेमिनाथ के भाई रथनेमि को पतन मार्ग से बचाने वाली महासती राजुल का उदाहरण हमारे सामने है।

सृष्टि के प्रारंभ में ही भगवान् श्री ऋषभदेव ने माता मरुदेवी एवं पुत्रियां ब्राह्मी सुन्दरी को मोक्ष मार्ग का पथिक बनाकर अपने अनुवर्ती अनुयायियों के लिये उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत कर दिया था जिसे चरम तीर्थंकर भगवान् महावीर ने व्यवस्थित रूप देकर चतुर्विध संघ में साध्वी एवं श्राविका को उनका उचित स्थान देकर नारी का सम्मान किया लेकिन दूसरी तरफ हम देखते हैं कि रामायण काल में और

महाभारत काल में नारी के साथ पुरुष ने जो खिलवाड़ किया, उससे मनुष्य समाज का मुख लज्जा से अवनत हो जाता है। पुरुष ने अपने पौरुष का नग्न तांडव करके पैशाचिकता की सीमा को भी मात दे दी। महासती द्रोपदी को भरी सभा में अपने गुरुजनों के समक्ष नग्न करने का प्रयास करना और नारी के साथ मनमाना व्यवहार करना मानवता के पतन का निकृष्टतम उदाहरण है।

शूद्र और नारी को वेद वाक्यों को सुनने तक का अवसर नहीं देना, नारी के साथ कितना बड़ा व्यंग्य है किन्तु नारी ने अपने त्याग और सेवावृत्ति में कभी कमी नहीं आने दी। बचपन माता-पिता और भाई-बहिनों की सेवा में बिताती है, जवानी सास-ससुर और पति-भक्ति में व्यतीत कर देती है फिर भी उसे मिलता क्या है? सिवाय लांछना और ताड़ना के कुछ नहीं। भारतीय जन-समाज की इस भयंकर महामारी को महावीर ने देखा, परखा और इस महामारी से जन-समाज का उद्धार करने का बीड़ा उठाया। समाज में एक महान् क्रांति लाने के लिये प्रयत्न प्रारंभ किया, स्वयं कष्ट सहे और सम्पूर्ण रूप में योग्यतम बनकर संसार का मार्ग प्रदर्शन किया।

अपने पूर्ववर्ती इतिहास को ध्यान में रखकर महावीर ने अपने संघ की स्थापना की जिसमें साधु और श्रावक के साथ साध्वी और श्राविका को भी उनका उचित स्थान देकर नारी मुक्ति मार्ग का पथिक बनाया। जैन धर्म में १९वें तीर्थंकर श्री मल्लिनाथ स्वयं नारी रूप में ही मुक्त हुए। १५ प्रकार के सिद्धों में स्त्री सिद्ध को स्थान देकर जैन धर्म ने नारी के प्रति न्याय किया है।

महासती चन्दन बाला (जो भगवान् महावीर की पट शिष्याओं में थी) का उज्ज्वल चरित्र नारी समाज के लिये अत्यन्त प्रेरणादायक है प्रातः स्मरणीय १६ महासतियों का आदर्श जीवन किसे अनुप्राणित नहीं करता? पर्यूषण महापर्व में पढ़ा जाने वाला श्री अन्तगढ़जी सूत्र में वर्णित काली महाकाली आदि महारानियों का चरित्र सुनकर किसे प्रेरणा नहीं मिलती।

श्री भगवान् महावीर द्वारा डाली गई चतुर्विध संघ की परिपाटी आज भी उसी रूप में चली आ रही है अर्थात् नारी को विकास के समान अवसर देकर महावीर ने जो महान् उपकार नारी समाज के साथ किया है। वह जैन धर्म की महान् विशेषता है जिसे हमें निःसंकोच स्वीकार करनी चाहिये।

नारी समाज को महावीर के झंडे तले आकर अपना विकास करना चाहिये और अपने जीवन को श्रेष्ठ से श्रेष्ठतम बनना चाहिये।

....

भगवान् महावीर के दिव्य सन्देश

• महेशचन्द्र जैन न्यायतीर्थ

भगवान् महावीर का अवतरण इस धरा पर २५०० वर्ष पूर्व हुआ था। यह संक्रमण का समय था। उस समय वैदिक संस्कृति और वैदिक क्रिया काण्ड का भयंकर प्रचार था। यज्ञों की आहुति में मानव तक को वलिदान कर दिया जाता था। स्वार्थ और हिंसा का ताण्डव नृत्य हो रहा था, शूद्रों और नारियों के प्रति आदर्श विस्मृत प्रायः थे। निरपराध मूक पशुओं की चीत्कार हो रही थी। श्रमण संस्कृति की उदात्त भावनाएँ नष्ट हो चुकी थीं, ऐसे ही समय में भगवान् महावीर का इस धरातल पर अवतार हुआ था।

भगवान् महावीर ने इस विषम परिस्थिति का अवलोकन किया उन्होंने मानव के विषण्ण मुख को सस्मित करने के लिए शान्ति की मन्दाकिनी प्रवाहित कर दी। अज्ञानान्धकार को समूल नष्ट करने के लिए केवलार्क की मरिचियों को सर्वत्र विस्तृत कर दिया। उनकी दिव्य ध्वनि से निःसृत शाश्वत सिद्धान्त युग की समस्याओं के लिए समाधान थे और इस परिवर्तित युग के लिए भी समस्याओं के सफल समाधान हैं। उनका एक-एक सिद्धान्त मानव के लिए अभ्युदय का स्रोत है।

इस समय मानव मात्र में पदलोलुपता, प्रभुत्व की अभिलाषा और सत्ता की कामना है। येन केन प्रकारेण सत्ता को प्राप्त कर धन संग्रह की आसक्ति, वैभव विलास का प्राप्ति में ही सर्वस्व समझने लगे हैं। विज्ञान ने नवीनतम शस्त्र प्रदान कर उनकी अभिलाषाओं की उत्कट वृद्धि करदी है। विषमता और आर्थिक असंतुलनता ने एक दूसरे का प्रद्वेषी वना दिया है। एक राष्ट्र अन्य राष्ट्र को अपने अधीनस्थ वनाना चाहता है। नैतिकता की धज्जियां उड़ चुकी हैं और जीवन की शान्ति समाप्त हो गई है।

भगवान् महावीर के उपदेश अहिंसा, अपरिग्रह और अनेकान्त ही इन वदलती हुई उलझनों के समाधान हैं। अव्यवस्थित मानव समाज शान्ति की प्राप्ति के लिए व्याकुल है। वह कातर दृष्टि से—दैन्य दृष्टि से इतस्ततः अवलोकन कर रहा है। उसकी इस व्याकुलता व कातरता को नष्ट करने वाली अहिंसा ही है।

अहिंसा ही व्यष्टि और समष्टि का कल्याण करने में सक्षम है। सभ्यता और संस्कृति का विकास अहिंसा से ही दिया जा सकता है। अहिंसा ही सुखों की खान है, धर्मों का सार है और जीवन का वरदान है। भगवान् महावीर की अहिंसा इतनी व्यापक है कि उसी में अन्य व्रत भी सम्मिलित हो जाते हैं। केवल प्राणियों का हनन मात्र ही हिंसा नहीं है बल्कि अनुदात्त भावनाओं का सद्‌भाव भी हिंसा है। सभी प्राणियों को जीवन प्यारा है चाहे वह क्षुद्रतम प्राणि भी क्यों न हो कहा भी है :—

'सव्वे जीवा वि इच्छन्ति जीविउं न मरिजिउं,
तम्हा पाणिवहं घोरं निग्गन्थाणं वज्जणं।'

अतः जो बात हमें अप्रिय है वह निश्चय ही दूसरों को भी अप्रिय हो सकती है। अतः 'आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न सम्तचरेत्' अपने से प्रतिकूल आचरण दूसरे के साथ न करना चाहिये। अहिंसा की व्याख्या करते हुए कहा है :—

'कर्मणा मनसा वाचा सर्वभूतेसु सर्वदा।
अक्लेशजननं प्रोक्त महिंसा परमर्षिभिः॥'

मन से, वचन से व कर्म से किसी भी प्राणि को क्लेश न पहुँचाना ही अहिंसा है। काषायिक भावों की उत्पत्ति से ही मानव हिंसा में प्रवृत्ति करता है। प्रमाद पूर्वक प्रवृत्ति करने पर हिंसा निश्चित है। तत्वार्थ सूत्रकार ने कहा है :—

'प्रमत्त योगात् प्राण व्यपरोपणं हिंसा।'

अप्रमादी के प्राण घात होने पर भी हिंसा निमित्त व बन्ध नहीं होता। इसलिए कषाय का अभाव अहिंसा और कषायों का सद्‌भाव हिंसा है, यह सर्वमान्य सिद्धान्त है। अतः काषायिक प्रवृत्ति का त्याग करना आवश्यक है। यदि मानव के जीवन में इसका विकास हो जाय तो यह जितनी आर्थिक विषमता है वह समाप्त हो जाय। आत्मा का वैभाविक गुण-कर्म-जब नष्ट हो जायेंगे तभी स्वाभाविक गुणों की प्राप्ति होगी अतः स्वभाविक गुण की प्राप्ति करने का प्रयत्न करना चाहिये। महावीर ने गृहस्थ और साधु दोनों के लिए अहिंसा का प्रतिपादन किया है। यह अहिंसा अव्यवहार्य नहीं है और न जीवन में अनुपयोगी है। इसको अपनाने से जीवन में सुपरिणाम ही प्राप्त होते हैं।

अहिंसा से ही व्यक्ति का सर्वांग पूर्ण विकास होता है। इसमें आत्मा से परमात्मा बनने की प्रक्रिया है। यह क्रोध, मान, लोभ इत्यादि सभी अशुभ प्रवृत्तियों का निषेध करती है। अहिंसा सभी प्राणियों की मंगल कामना करती है 'मित्ति मे सव्वभूएसु' अर्थात् सब प्राणियों में मेरी मित्रता है, इस भावना को उत्कृष्ट बनाती

है और विश्व बन्धुत्व की भावना को विकसित करती है। यह कोई जाति विशेष का धर्म नहीं है इसमें विश्व मंगल का भाव स्पष्ट है। यदि मानव मात्र यह समझने लग जाय कि जैसी पीड़ा मुझे होती है वैसे ही दूसरों को भी होती है तो संभवत: वह हिंसा की ओर प्रवृत्त न हो।

अपरिग्रह का सिद्धान्त इस युग के रोगों को उन्मूलन करने की एक औषध है। आज भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, जमाखोरी की जो प्रवृत्ति दिनों-दिन वृद्धि को प्राप्त हो रही है, वह सब अर्थ सञ्चय की घातक प्रवृत्ति के कारण ही है। अत: इस अर्थ सञ्चय की प्रवृत्ति पर संयमन करना आवश्यक है। अन्यथा मानव की लालसाओं की वृद्धि का कोई पार नहीं। इसका कहीं अन्त न होगा। वह असीमित आवश्यकताओं में मकड़ी की तरह जाल में फंसता चला जायेगा। वृद्ध होने पर भी मानव तृष्णा का त्याग नहीं करता, वह भोग लिप्सु बनकर उनकी प्राप्ति के लिए उनके पीछे दौड़ता रहता है किन्तु कहा है :—

'तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णा:,
भोगा: न भुक्ता: वयमेव भूक्ता ।।

तृष्णा जीर्ण नहीं हुई, हम स्वयं जीर्ण हो गये हैं। भोगों को हमने नहीं भोगा, भोगों के द्वारा हम स्वयं भोग लिये गये हैं। अत: भोगों का त्याग आवश्यक है। भोगों का त्याग ही मानव जीवन को उत्कृष्ट बनाता है। इस युग में विषमता का एक मात्र कारण अर्थ है। किन्तु इस विषमता का निवारण तभी संभव है जब मनुष्य स्वयं भौतिक समृद्धि में आसक्ति कम करदे। अपरिग्रह का सिद्धान्त इसी का उपदेश देता है। कहा है :—

मूर्च्छा परिग्रह:

मूर्च्छा-आसक्ति ही परिग्रह है। एक चक्रवर्ती परिग्रह से रहित हो सकता है और एक निर्धन भी परिग्रही हो सकता है। भरत चक्रवर्ती का उदाहरण स्पष्ट है। वे संसार में रहते हुए भी जल कमलवत् जीवन-यापन करते थे। एक निर्धन व्यक्ति भी अप्राप्य सम्पत्ति के प्रति उत्कट अभिलाषा रखता है तो वह भी परिग्रही है। परिग्रह भी दो प्रकार का है :— अंतरंग और बहिरंग। अंतरंग परिग्रह क्रोध, मान, माया, लोभ, काम इत्यादि हैं; जिनके त्याग से आत्मा निर्मल हो जाता है। बहिरंग परिग्रह क्षेत्र वास्तु, हिरण्य, सुवर्ण, दास दासी इत्यादि हैं। गृहस्थ को इनकी मर्यादा करना आवश्यक है। नैतिक आचरण से इनका संग्रह करना चाहिये। आवश्यकता से अधिक संग्रह करना सामाजिक अपराध है। आज देश में एक ओर करोड़ों मनुष्य भूखे या अधभूखे रहकर जीवन-यापन कर रहे हैं। लाखों को कपड़ा और मकान मयस्सर नहीं। इसका एकमात्र कारण संग्रह वृत्ति है। यदि संग्रह वृत्ति का त्याग

कर संविभाग वृत्ति अपनाई जाय तो देश में रोटी, कपड़ा और मकान तीनों महान् समस्याओं का समाधान हो जाय।

भगवान् महावीर का अनेकान्तवाद सिद्धान्त मौलिक और मूल्यवान् सिद्धान्त है। भगवान् महावीर के समय में दार्शनिकों ने आंशिक सत्य को ग्रहण कर और उसे ही पूर्ण समझ लिया था। वे अपनी इन भ्रामक मान्यताओं का प्रसार एवं प्रचार करते थे। भगवान् महावीर तत्त्व-द्रष्टा थे, उन्होंने बतलाया कि आंशिक सत्य को ही पूर्ण सत्य नहीं मानना चाहिये। यह एक प्रकार का अज्ञान है। इस अज्ञान से विरत होना आवश्यक है। उस समय कोई संसार को क्षणिक मानता था, कोई संसार को शाश्वत मानता था, कोई प्रत्यक्ष को ही प्रमाण मानता था, कोई प्रत्यक्ष अनुमानादि को, कोई केवल ज्ञान से ही मुक्ति मानता था, मुक्ति के लिए कोई क्रिया को ही प्रधानता देता था। कोई पंचभूतों से आत्मा की उत्पत्ति मानता था, कोई आत्मा का ही निषेध करता था, कोई आत्मा से चैतन्य और ज्ञान को अलग मानता था, कोई क्रियावादी था, कोई अक्रियावादी, इस प्रकार सभी अपने-अपने मत का प्रतिपादन कर एक दूसरे का खंडन करते थे और उसे बुरा भला कहते थे। भगवान् महावीर ने अनेकान्त की दिव्य दृष्टि दी और बतलाया कि इस प्रकार एकान्त मान्यताएं सभी अज्ञानता से परिपूर्ण हैं। इस प्रकार की मान्यता वालों का कभी उद्धार नहीं हो सकता। क्योंकि अज्ञानता के कारण वे एक दूसरे पर छींटाकसी करते हैं। इस तरह वे अहिंसक नहीं रह सकते। स्याद्वाद या अनेकान्तवाद का सिद्धान्त ही भगवान् ने इसलिए बतलाया कि दूसरों के विचारों को भी उदारतापूर्वक ग्रहण करो। इस सिद्धान्त को स्वीकार करने से पारस्परिक झगड़े शान्त हो सकते हैं। स्याद्वाद का उपयोग हमें आपसी मतभेदों को दूर करने के लिये करना चाहिये। मनुष्य आग्रह के वशीभूत होकर दूसरों के विचारों को मिथ्या और अपने विचारों को ही सत्य मानता है ऐसी अवस्था में कलह होना आवश्यक है। अतः क्लेश को मिटाने के लिये इसकी शरण लेना आवश्यक है। जिस दिन मानव भगवान् महावीर के अहिंसा, अपरिग्रह और अनेकान्त के सिद्धान्त को अपनायेगा वह दिन इतिहास का स्वर्णाक्षरों में लिखा जायगा और तब मानव में राग, द्वेष, हिंसा और विरोध नहीं रहेंगे। सभी प्राणियों में शान्ति का निवास होगा।

महावीर—एकाग्रता एवं अपरिग्रह

• **मानमल शर्मा**, बी.एस-सी.
मंत्री, रा. शि. सं. छोटी सादड़ी

किसी भी कार्य की सफलता मन की एकाग्रता पर निर्भर है। विद्या अध्ययन हो या व्यापार अथवा समाज सेवा ही हो, मन की चंचलता पर अंकुश लगाए बिना सफलता असंभव है। संसार में जितने भी महापुरुष हुए हैं सभी अपने कार्य में अनिवर्चनीय एकाग्रता के परिणामस्वरूप ही समाज में यश और सम्मान प्राप्त कर सके।

एकाग्रता ही बौद्धिक कुशलता का आधार है। जवाहरलाल नेहरू अपनी वृद्धा अवस्था में भी एक युवक से ज्यादा स्फूर्ति तथा शक्ति से काम करते थे इसका वास्तविक कारण उनकी एकाग्र एवं स्थिर बुद्धि थी।

मन की एकाग्रता कैसे सधे ? हम बाहरी संसार से अलग होकर भी मानसिक तनाव से दूर नहीं हो सकते। अनेक-विचारकों ने इस प्रश्न का समाधान ढूंढ़ने का प्रयास किया और अंत में सभी इस निर्णय पर पहुँचे कि छोटी-छोटी बातों से अपने मन को विलय करे। इसी को मन से ऊपर उठने की प्रक्रिया कहते हैं। तथा यही आध्यात्मिक साधना का मार्ग है। यदि जीव में कर्म विशुद्ध न हो, आचार विचार विशुद्ध न हो तो मन की एकाग्रता भी संभव नहीं है।

मन की एकाग्रता का अमोघ साधन जीवन की परिमितता है। हमारा सब काम नपा तुला होना चाहिए, जैसे औषधि नपी तुली ली जाती है वैसे ही आहार निद्रा नपी तुली होनी चाहिये और वाणी पर भी नियंत्रण होना चाहिये।

वर्तमान समय में निश्चय ही महावीर की एकाग्रता का जन-साधारण पर प्रभाव कम होने का मुख्य कारण है सामाजिक तथा आर्थिक विषमताएँ। मनुष्य भौतिकवाद की ओर अधिक आकर्षित है भगवान् महावीर ने अपरिग्रह का सिद्धान्त प्रस्तुत कर मानव जाति का कल्याण किया है। मनुष्य की इच्छाएँ अनन्त हैं, यदि

उन पर नियंत्रण नहीं किया गया तो समाज की सारी व्यवस्थाएँ—अस्त व्यस्त हो जायेंगी।

आज का समाजवाद महावीर के सिद्धान्तों का ही दूसरा रूप है। यदि हमें इस समाजवादी परम्परा में जीना है तो हमें ईमानदारी से महावीर के सिद्धान्तों को अपनाना होगा। समाज में न्याय, समानता एवम् सद्भावना की स्थापना हेतु पूंजीवाद के स्थान पर अपरिग्रह वाद की स्थापना करनी होगी। आज के समाजवाद की व्यवस्था का मुख्य आधार ही महावीर के सिद्धान्त हैं, परन्तु दुःख तो तब होता है जब महावीर के अनुयायी ही महावीर के सिद्धान्तों को कुचलते हुए नजर आते हैं। भगवान् महावीर के नाम पर गरीब जनता का शोषित पैसा, काला बाजारी और टैक्स आदि की चोरी का पैसा दान देने से ही कुछ व्यक्ति आज के समाज में सम्मान अवश्य पा सकते हैं परन्तु महावीर की दृष्टि में नहीं।

मंदिर में जाकर मूर्ति को प्रणाम करने मात्र से ही अथवा अपने आपको कष्टमय जीवन भोगते हुए प्रवचन देने मात्र से ही व्यक्ति धर्म विशेष से नहीं बँध जाता वरन् व्यक्ति का स्वभाव हो उसका धर्म है। धर्म कोई बात करने की वस्तु नहीं बल्कि आचरण की वस्तु है।

सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन और सम्यक् चरित्र महावीर के दिये तीन रत्न हैं, और ये ही जैन धर्म की जान या आत्मा है। जो व्यक्ति सही रूप में इन तीन रत्नों को अपनाता हुआ महावीर के सिद्धान्तों का अनुसरण करता है वही व्यक्ति सच्चे रूप में महावीर का अनुयायी है, अन्यथा बहुरूपिये का वेष पहन कर समाज के सामने कुछ और तथा समाज से छिप कर कुछ और बनने वाले लोग यदि अपने आपको भगवान् महावीर के अनुयायी बताते हैं तो वे महावीर और उनके धर्म के प्रति कुठाराघात तो करते ही हैं, परन्तु अपने आपको भी धोखे में रखते हैं और उन्हें समाज तथा महावीर कभी क्षमा नहीं करेगा।

आईये, आज हम भगवान् महावीर के २५००वें निर्वाण महोत्सव पर सब एक साथ मिलकर उनके द्वारा दिये गये मानव मात्र के कल्याणकारी सिद्धान्तों के अनुसरण का संकल्प लेकर समाजवाद में सहयोग करें।

भगवान् महावीर की अमृतवाणी

• नेमिचन्द्र सुराना, M.A., B.T.
प्रधानाध्यापक
श्री गोदावत जैन उच्च माध्यमिक विद्यालय
छोटी सादड़ी (राज०)

महान् दार्शनिक रूसो ने सामान्येच्छा (General will) के सिद्धान्त की महत्त्वपूर्ण परिकल्पना की। सामान्य इच्छा—यह एक व्यक्ति की भी इच्छा है और समाज के सामान्य तथा सम्पूर्ण व्यक्तियों की समग्र इच्छा का भी पर्याय है। भगवान् महावीर की वाणी में बहुत समय पहले यह विचारणा ध्वनित हुई थी। भगवान् महावीर ने समता की पीठिका पर अपने विचारों का अवतरण किया, यही कारण है कि महावीर की वाणी तत्कालीन युग में जितनी समीचीन थी आज की परिस्थितियों में भी समीचीन युगबोध लिए हुए है।

भगवान् महावीर की वाणी समता के विम्व की प्रतिछाया है, उसमें व्यक्ति आत्मा की धड़कन तथा विश्वात्मा की झंकार है।

भगवान् महावीर ने अपने जीवन पर्यन्त साधना करके जो उपलब्धि प्राप्त की, उसमें (१) सर्व सिद्धान्त समादर, (२) सम्यक्त्व व (३) स्वाध्याय का अपना विशेष महत्त्व है।

सर्व सिद्धान्त समादर से अनेकान्तवाद की पुष्ट पीठिका वनती है। अपने सिद्धान्त को ही पूर्ण न मान कर दूसरों के विचार में जो सत्य का अंश है, उसे महत्त्व देना महावीर की अनुपम उपलब्धियों में से एक है। भगवान् महावीर के समाजवादी स्वस्थ चिन्तन की पावन पृष्ठभूमि भी है। यहीं से अपरिग्रह की महान्

संस्कृति का उदय होता है। महावीर स्वामी ने क्रोध, लोभ, मोह, माया, मान सभी विकारों को अनर्थों की जड़ के रूप में निरूपित किया है। क्रोध को शांति से, माया को सरलता से व लोभ को सन्तोष से जीतो।

भगवान् महावीर समाज में राष्ट्रीय जागृति लाना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने विवेक को जागृत करना आवश्यक बतलाया।

भगवान् महावीर ने अपने संदेश में अहिंसा, सत्य, अचौर्य तथा ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह पर बहुत बल दिया। त्याग, संयम, प्रेम, करुणा, शील और सदाचार उनके प्रवचनों का सार है। हिंसागत विश्व में अहिंसा के उदात्त सिद्धांत की प्रस्तुति भगवान् महावीर का सर्वोच्च क्रांति दर्शन है तथा अमृतवाणी का मंथन है।

मोक्षमार्गस्य नेतारं भेत्तारं कर्मभूभृताम् ।
ज्ञातारं विश्व तत्त्वानां वन्दे तद्गुणलब्धये ।।

\+ \+ \+

सत्त्वेषु मैत्री गुणिषु प्रमोदं क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम् ।
माध्यस्थभावं विपरीत वृत्तौ सदा ममात्मा विदधातु देव ।।

चन्डकोशिक का क्रोध त्याग

द्वितीय खण्ड
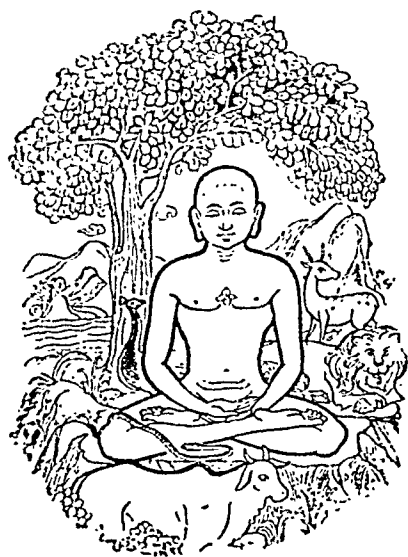
काव्यांजलि

धर्म में किसी भी प्रकार के पक्षपात को, जाति-गत भेद-भाव को,
ऊच-नीच की कल्पना को, राजा-रंक अथवा अमीर-गरीब
की भावना को तनिक भी स्थान नहीं है। धर्म
की दृष्टि में यह सब समान है।

महावीर का निर्वाण : एक संदर्भ

• डॉ० नरेन्द्र भानावत

महावीर का हाथ,
आग नहीं उगलता,
वह सुलगती हुई आग को
अनुराग का आलोक देता।

+

महावीर की दृष्टि
आग्रहों में नहीं बंधती,
वह उलझे डोरों में,
सुलझन बन,
संवरती, विहंसती।

+
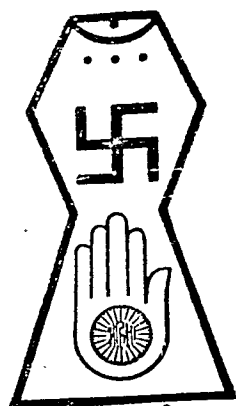
महावीर का तेज,
किसी को निस्तेज नहीं करता,
वह सबको सतेज करता,
स्वयंमेव तपता फैलता।

+

महावीर का निर्वाण
किसी की मुक्ति नहीं रोकता,
वह सबकी मुक्ति के लिए,
सबकी स्वतंत्रता के लिए,
प्रेरणा का स्रोत बन
अविराम जलता।

+

❖❖

महावीर अवतार

• हास्य कवि **हजारीलाल जैन 'काका'**
पो० सकरार जिला झांसी उ०प्र०

देवों और मनुष्यों ने क्या पशुओं ने जयकार किया था,
नर्कों में भी खुशी हुई जब महावीर अवतार लिया था।

मिथ्या धर्म और हठ धर्मी तब मानव का आभूषण था,
दुराचार अत्याचारों से लज्जित होता खर दूषण था।
हिंसा चोरी झूठ आदि से तब मानव ने प्यार किया था,
नर्कों में भी खुशी हुई जब महावीर अवतार लिया था।।

अश्वमेध, नरमेध यज्ञ तक धर्म समझकर के करते थे,
फिर पशुओं को कौन पूछता लाखों झोंक दिया करते थे।
ऐसे दुर्दिन में पशुओं से बोलो किसने प्यार किया था,
नर्कों में भी खुशी हुई जब महावीर अवतार लिया था।।

दुष्ट दानवों ने जीवों पर जब-जब अत्याचार किया है,
तब-तब महावीर जिन हरि हर राम कृष्ण अवतार लिया है।
न्याय नीति से घृणित प्रथा का इन सबने संहार किया था,
नर्कों में भी खुशी हुई जब महावीर अवतार लिया था।।

जिओ और जीने दो सबको सही धर्म की राह बताई,
जैसा दुःख अपने को होता वैसी समझो पीर पराई।
दानवता की सभी प्रथाओं पर सन्मति ने वार किया था,
नर्कों में भी खुशी हुई जब महावीर अवतार लिया था ।।

आज विश्व में पुनः गरजने लगे वही हिंसा के बादल,
जहां देखियेगा भाई का भाई ही पायेंगे कातिल।
अतः वीर के पद चिह्नों पर चलकर यह शुभ वर्ष मनायें,
दीन दुःखी जीवों के अंदर निर्भयता की ज्योति जलायें ।।

'काका' सब से प्यार करें हम जैसा प्रभु ने प्यार किया था,
नर्कों में भी खुशी हुई जब महावीर अवतार लिया था ।

वन्दना

त्रिशला-नंदन भगवान् महावीर (अप्रकाशित काव्य से)

वैशाली का राज पाट भी जिनको लुभा नहीं पाया था,
राज पुत्र होकर भी जिसने सारा वैभव ठुकराया था।

जिनके आत्म तेज के सन्मुख ठहर सकी न छल की छाया,
राग द्वेष के साथ मोह मद का जिसने कर दिया सफाया।

× × ×

डिगा न पाई विषय वासना की जिनको उन्मत्त वहारें,
हिला न पाई गर्मी, सर्दी, वर्षा की पीड़ित वौछारें।

इसीलिये तो ऋद्धि सिद्धियां चरणों पर लौटा करती थीं,
भूत भविष्यत वर्तमान की घटनायें सन्मुख रहती थीं।

× × ×

जिनकी वाणी सुनकर के अज्ञान स्वयं ही हट जाता है,
जिनके पथ पर चलने वाला निश्चित मोक्ष पहुंच जाता है।

जिनके दर्शन करके भविजन काटा करते भव वंधन को,
'काका' कवि का कोटि नमन है आज उन्हीं त्रिशला नंदन को,

× × ×
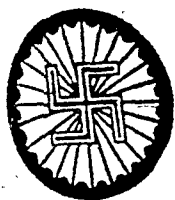
सन्मति के सन्देश से

• शर्मनलाल "सरस"
सकरार (झाँसी) U.P.

कहता है हर नर समाज से, देश, प्रदेश, विदेश से,
यह संसार पार पा सकता, सन्मति के संदेश से।

[१]

आज विश्व फिर खड़ा हुआ, हिंसा के घृणित कगार पर,
सत्य शांति खोज रहा, वह बमों के आधार पर।
हिंसक शस्त्रों का हो बैठा, इस हद तक निर्माण है,
बटन दबाते किसी एक क्षण, जग होले शमशान है।
बड़ी-बड़ी डर रहीं शक्तियाँ, अपने ऐसे भेष से,
यह संसार पार पा सकता, सन्मति के संदेश से।।

[२]

अब ऐसे में वर्तमान; यदि चाहे दर्द न व्याप्त हो,
सदियों का इतिहास, सभ्यता का यों नहीं समाप्त हो।
अपने मन पर करे नियंत्रण, ऐसे उल्कापात में,
महावीर ने दुःख का कारण, कहा एक ही बात में।
अधिक जरूरत से धन रखना, बंधना दुःख के क्लेश से,
यह संसार पार पा सकता, सन्मति के संदेश से।।

[३]

आज आदमी सिर्फ परिग्रह, की भाषा में लीन है,
जितना ऊपर धनी लगे, अन्दर से उतना दीन है।
ज्यादा रखे जरूरत से जो, करता अत्याचार है,
मानवता का प्रबल शत्रु वह, बागी है गद्दार है।
काला मुंह कर करो तिरस्कृत, ऐसों को इस देश से,
यह संसार पार पा सकता, सन्मति के संदेश से ॥

[४]

जब तक जहाँ अपरिग्रह व्रत को विश्व नहीं अपनायेगा,
मानवता का शोषण जग से कभी न कम हो पायेगा।
अतः वीर की इस वेला पर यही एक व्रत धार लें,
जितने से हो सके गुजारा उतना ही स्वीकार लें।
'सरस' जैन ने सरस गीत यह लिखा इसी उद्देश्य से,
यह संसार पार पा सकता, सन्मति के संदेश से ॥

वर्द्धमान तव अभिवन्दन है।

• विपिन जारोली
सम्पादक
काव्यांजलि : वार्षिकी
कानोड़ (राजस्थान)

वर्द्धमान तव अभिवन्दन है।
ज्ञातपुत्र, त्रिशला–नन्दन, वीर जिनेश्वर वन्दन है।
वर्द्धमान तव अभिवन्दन है।

श्रमण संस्कृति के अधिनायक।
सत्य–अहिंसा के चिर गायक।
मुक्ति—मार्ग के अमर पथिक, तव कोटि–कोटि जन का वन्दन है।
वर्द्धमान तव अभिवन्दन है।

चण्ड, माली उद्धारक नर वर।
शूद्र, नारी के तारक जिनवर।
मूक प्राणियों के चिर रक्षक, जिनवाणी के जीवन–धन है।
वर्द्धमान तव अभिवन्दन है।

आज बढ़ रहे एटम, अणुबम।
अन्धकार शोषण का दुर्दम।
पिसती–कराहती मानवता, कर रही तुम्हारा आह्वान है।
वर्द्धमान तव अभिवन्दन है।

❖❖

अहिंसा गाय

• डॉ० महेन्द्र भानावत
उपनिदेशक (अनुसंधान)
भारतीय लोककला लमंड
उदयपुर (राजस्थान)

अहिंसा एक गाय है,
गाय ! जो हमारी माता है ।
घी और दूध की नदियाँ बहाने वाली,
हम सबकी भाग्य विधाता है ।
उसका ग्वाला,
जिसके कंधे पर लाठी थी ।
लाठी ! जो उसका सहारा था,
गाय का सहारा ग्वाला ।
ग्वाले का सहारा लाठी,
गाय ग्वाला और लाठी ।
एक दूसरे के अभिन्न सहपाठी,
मगर अब उसका ग्वाला वह ग्वाला नहीं रहा ।
अब उसकी लाठी पिस्तौल बन गई है,
गाय वही है ।
मगर ग्वाला वदल गया है,
पिस्तौल जिसका लाइसेंस है ।
मगर ग्वाले का सेंस नोनसेंस वन गया है,
वह उस गाय को ।
जो ठीक-ठीक जाना चाहती है,

खुंखारा कर बार-बार खेंकरे खेलाता है ।

गाय जो,

अपरिग्रही सांची और शुद्ध जिसका ईमान है ।

जो लजाती नहीं और जिसे अपने दूध पर अभिमान है,

गाय जो दूध की जिनगानी दे ।

ग्वाला जो पिस्तौल का पानी दे,

चाहता है कि उसकी गाय ।

दूध का दूध नहीं दूध-कम-पानी दे,

कि उसका एक थन दूध ।

और तीन थन पानी दे,

यही जिनगानी दे ।।

युगीनः परिशीलन

• गौतम "निमंजु"

थम नहीं सकते कभी स्वर संस्कृति के,
चिह्न जो अवशेष हैं।
फिर से निनादित हो उठेंगे,
वक्त की इस चौदीवारी में।
होता नहीं संभव कभी
थम जाय रजनी
स्याह आँचल को लपेटे;
वक्त के उस छोर पर उषा खड़ी है।
जग उसांसें ले रहा है
मर्म से उठती पुकारों को
कर नहीं वह पा रहा है आत्मसात्
करुण क्रन्दन
धृष्ट वंदन
धर्म का अवसान करके
कर रहे अधर्म का वंदन
जा चुकी है दूर अब पावन-प्रभा
युग की जरूरत है
समय के नव-किरन की।

× × ×

वक्त यों ही बीतता है,
बीतती यों ही निरर्थक जिन्दगी है।

धर्म की पावन कसौटी पर
यदि कसले कोई स्वजीवन को
छोड़कर भौतिक इरादों को
ये संभव है
वही कुछ पा सकेगा
गा सकेगा उन धुनों को
जो कभी महावीर ने टेरी स्वरों में।
गूंज जाये स्यात् अब
श्रोत्र जग के आज भी सुनले स्वरों को
थाम ले वह राह जो
सार्वभौमिक सत्य है।
निर्वाण उत्सव तो सदा—
यूं ही रहेगा
हर बरस पर
संस्कृति के स्वर सुनाने के लिए
युग को जरूरत है
समय के नव-विजन की।
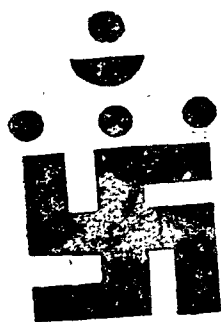
युग-धर्म

• रचयिता–सत्यनारायण प्रसाद
केन्द्रीय विद्यालय, नागपुर

यह बीसवीं शताब्दी है,
विज्ञान का प्राबल्य है।
भौतिक उपलब्धि ही,
सर्वत्र चरम लक्ष्य है।
अध्यात्म की कोमल रज्जु-पाश,
तर्क–असि से
पूर्णतया छिन्न है।
मानसी ऊहा पोह के वात्याचक्र में
हृदय का कांत प्रान्त
नितान्त आच्छन्न है।
पर,
भौतिक उपलब्धियों का
नित्य प्रति योगदान
जीवन को सचमुच क्या
सुख-शान्ति दे पायेगा,
या जीवन कुरंग बन जायेगा,
सुख-तृष्णा की आग में
स्वयं जल जायेगा!
विज्ञान के दूर पदक्षेप से
नीरसता, अशान्ति

जीवन की सरिता में
तरंगायित होती है।
सुख, प्रेम, सद्भाव,
शान्ति, सहिष्णुता,
सदाचार, सत, कर्म,
विश्वास, पुनीतता,
दिनानुदिन
जाने किस लोक को
लुप्त हुए जाते हैं।

धरती का सत्व तत्व रीत रहा,
तम और रज परिपूर्ण है।
तभी तेर अशान्ति है,
युद्ध और क्रान्ति है।

मन को शान्ति,
सुख का सत्य-रूप
मिलता है
एकमात्र दिव्य हृदय से।
मानस उलझाता है,
हृदय ही बचाता है।
प्रेम और श्रद्धा,
सत्य, अहिंसा, साधना
जीवन को सौरभ लुटाते हैं।

'पर' हित 'स्व' को
न्योछावर करें तो,
'स्व' की पुनीतता
निरन्तर निखरती है।
भौतिकता रोग है,
अध्यात्म आसव है।

मानव-मन
निर्वाण पाने का
एक ही साधन है।

कर्म एक बन्धन है,
कर्म से मुक्ति निर्वाण है
यही परम सुख है,
सत्य है, लक्ष्य है।

तभी तो आज से पच्चीस सौ वर्ष पूर्व
राजकुल का कुमार
वर्द्धमान महावीर
ऐहिक सुखों का
मायाजाल तोड़कर,
कष्टों को झेलकर,
तपः पूत तन-वचन-मन ले,
जन-जन के मन को
पावन करता रहा।

आज इस जर्जरित मानवता को,
अपेक्षा है वैसे ही उपदेश की,
वही सन्मार्ग है,
जिसमें न राग है, न द्वेष है,
न छूत, न अछूत है,
जाति का न भेद है
प्रबुद्धता ही पूज्य है।
विश्व-धर्म का वह महोदधि है,
प्राणियों का आश्रय है।
भावना के क्षेत्र में
प्रेम बीज बो कर

श्रद्धा-सुमन से
जीवन सँवारने का
एक ही उपाय है ।

उस दिव्यालोक में
मानव निखार ले
चेतना को, आत्मा को
मन को, शरीर को;
देख फिर कैसा
दिव्य तू स्वयम्, है !

क्षणिकाएँ

• वासुदेव चतुर्वेदी
पोस्ट ऑफिस के पास
छोटी सादड़ी (राज)

बचपन

कली जिसने
काँटों में भी
सुगंध बिखेर दी
खिलने पर
वह चुपचाप
पाहुने की तरह
विदा हो गया
जाने कब
उठकर !

यौवन

कई भूलों का चौराहा
जिस पर
जवानी की रवानी में,
कई गाड़ियाँ टकराईं,
घायल दिल थाम,
आहें भरता,
छटपटाता रहा !
पर 'वह' चली गई,
नश्तर लगा कर !

बुढ़ापा

बिन बाती तेल का दीपक
झंझावातों में निस्सहाय सा ।
थरथराती लौ की तरह,
इन्तजार कर रहा
किसी दम बुझ जाने का ।

जिन्दगी

रंगहीन,
स्वादहीन
गंधहीन
जिसका अस्तित्व
अन्ततोगत्वा
'कुछ नहीं'

सिन्दूर

किसी कुँवारी माँग में,
करीने से लगा सिन्दूर
'नो डेंजर एट आल' का
लटकता
साइन बोर्ड !

ग्वाले द्वारा श्रमण भगवान् महावीर के
कानों में कीलें ठोकते हुए ।

तृतीय खण्ड

मुक्तक

मुक्तक

चलै अन्दर कतरनी क्या करैगी हाथ की माला,
मरी जब तक न इक्षायें मिलै न मुक्ति का प्याला,
अगर है मोक्ष की इक्षा तो 'काका' मन करो वश में—
तुम्हारी वासनाओं ने तुम्हें बरबाद कर डाला,

× × ×

जगत् में जीव जितने हैं किसी को अन्य मत लेखो,
सभी को प्राण प्यारे हैं किसी पर जाल मत फैंको,
श्री महावीर स्वामी की अहिंसा यह बताती है,—
अगर कुछ दे नहीं सकते तो केवल प्यार से देखो,

× × ×

हास्य कवि **हजारीलाल जैन 'काका'**
सकरार (झांसी)

●

खींच पायो तो मधुर व्योहार से खींचो,
सींच पायो तो—हृदय की धार से सींचो,
तलवार की तो जीत से हर हार अच्छी है—
जीत पायो तो मनुज को प्यार से जीतो,

जब गंध अधिक बढ़ती, तब बाग उजड़ जाता है,
आवाज अधिक बढ़ती, तब राग उजड़ जाता है,
हर चीज की सीमा है, फिर भी अगर मानो—
जब स्वार्थ अधिक बढ़ता, व्योहार बिगड़ जाता है,

हुश्यार से हर काम संभल जाता है,
व्योहार से हर काम निकल आता है,
तुम तो जरासी बात को रोते हो यार–,
प्यार से पाषाण पिघल जाता है,

—शर्मनलाल 'सरस'
सकरार (झाँसी)

चोट खाकर रो पड़े वह आदमी नादान है।
लड़खड़ाते गैर पर हंसना बड़ा आसान है।
थाम ले जो हाथ, गिरते आदमी का
आदमी होता वही इन्सान है।।

दुलराता हूँ दुख को अन्धियारी रातों में।
सहलाता हूँ सुख को दुखियारी घातों में।
भावों का तूफान मचल जाता जब दिल में,
मन को बहलाता हूँ मन ही मन बातों में।।

प्यार का सामना वार से होता है।
नाव का सामना मंझधार से होता है।
चूम ले जो हाथ, चांटा मारने वाले का,
तो नफरत के बदले में प्यार होता है।।

हंसना कठिन, रोना बहुत आसान होता है।
फूल अपमानित, शूलों का मान होता है।
यूं न ठुकराओ किसी भी आदमी को तुम,
आदमी खुद ही भगवान् होता है।।

नफरत नहीं, प्यार को पहचानते हैं।
पराये को भी हम, अपना ही मानते हैं।
गुजार दी होगी तुमने उम्र रोकर,
हम तो केवल हंसना ही जानते हैं।।

काव्य का अपना निजी कुछ अर्थ होता है।
विजयी बनता वही जोकि समर्थ होता है।
अर्थ के बिना दुनिया में कोई अर्थ नहीं,
अर्थाभाव में जीना भी व्यर्थ होता है।।

धरती की बाहों में जग सोया है।
सपनों की दुनिया में मन खोया है।
तनिक सम्हल कर चलो दूब पर,
शबनम के मिस अम्बर रोया है।।

नाज, नखरों के झूलों पर झूली हो।
हुस्न की मतवारी क्यारी में फूली हो।
वसन्त की सुहानी सुबह देखी है केवल,
पतझर की सांझ को क्यों भूली हो ?

काम थोड़ा, शोर ज्यादा हो रहा है।
होठ हंसते, मन बेचारा रो रहा है।
जिन्दगी में नकल इतनी आ गई है,
असलियत को आदमी खुद खो रहा है।।

सागर की साँसों में पीड़ा बोल रही है।
चंचल लहरें मन की गांठें खोल रही हैं।
लाज से लाल डूबते सूरज का बोझा,
अनव्याही अंधियारी रजनी तोल रही है।।

जिन्दगी कविता नहीं, पूरी कहानी है।
बंदगी भक्ति नहीं, श्रद्धा जमानी है।
फौलाद को पानी बना दे बाजुओं से,
हिम्मते-मर्द वही होती जवानी है।।

तन की पीर, नीर में बह जाने दो।
मन की पीर, अधर से कह जाने दो।
निर्माण करो तुम, नई चेतनाओं का,
टूटे खंडहर को ढह जाने दो।।

आकृति से हर आदम इंसान नहीं होता।
पूजा का हर पत्थर, भगवान् नहीं होता।
सर्वस्व लुटा दो जीवन भर का भी तुम,
अपनों पर कोई अहसान नहीं होता ।।

अहसास नहीं, मन को विश्वास चाहिए।
तूफान नहीं, जीने को सांस चाहिए।
लाख समन्दर भी कम होंगे जीवन में,
केवल अधरों पर थोड़ी सी प्यास चाहिये ।।

दुख कहने की बात नहीं सहना होता है।
सुख जम सके कहां, उसको बहना होता है।
मुस्कानों से झेल सके जो दुख को साथी!
इन्सान नहीं, भगवान् उसे कहना होता है ।।

गतिशील करो चरणों को मंजिल पास नहीं है।
कालचक्र गतिमान, किसी का दास नहीं है।
जीवन की हर सांस सार्थक कर डालो तुम,
सांसों पर पल भर का भी विश्वास नहीं है ।।

दुख की छाया में ही सुख पलता है।
सुमन फूल की डालों पर फलता है।
दर्द संजोना सीखो मेरे हमदम,
संघर्षों से जीवन–दीप सदा जलता है ।।

प्रेम महक फूलों की, जिससे जन महका करता है।
प्रेम चुभन शूलों की, जिससे तन डरता रहता है।
प्रेम नशे का वह मादक प्याला होता है,
आँखों से पीकर ही मन बहका करता है ।।

अधिकार मिलते नहीं, लिये जाते हैं।
आजाद हैं, मगर गुलामी किये जाते हैं।
वन्दन करो उन सेनानियों को,
जो मौत के आँचल में जिये जाते हैं ।।

दुआ नहीं, हमें तो दवा चाहिए।
घुटन से मुक्त करे वह हवा चाहिए।
सुध-लोलुप देवों की कमी नहीं,
धरा को विषपायी शिवा चाहिए।।

चमकता सितारा आसमां से टूट जाता है।
बुलबुला पानी का क्षण में फूट जाता है।
हर क्षण की सार्थकता स्वीकारो दोस्त !
काहिल से वक्त भी रूठ जाता है।।

शहनाई के स्वर पुराने नहीं लगते।
हमदर्दी के बोल, अजाने नहीं लगते।
नई रोशनी में जीने वालों को,
नसीहत के गीत सुहाने नहीं लगते।।

राहों ने नहीं, निगाहों ने बुलाया है।
चाहों ने नहीं आहों ने रुलाया है।
भूलने की कसमें निभ नहीं पाती मुझसे,
तुम्हें भूलने में खुद को भुलाया है।।

नेकी, ईमान और रहम पर पहरा हो गया है।
जख्म खुदगर्जी का रिस कर गहरा हो गया है।
इन्साफ की चीखें गूंजती तो बहुत हैं,
लेकिन खुद खुदा ही बहरा हो गया है।

बहारों में चमन से फल झड़ रहे हैं।
सत्ता के लोभ में झगड़े बढ़ रहे हैं।
लीडरी की छीना-झपटी देखकर लगता है,
इन्सानियत छोड़कर मजमा बढ़ रहा है।

जलन जानी नहीं, मगर जलते ही रहे।
राह पहचानी नहीं, मगर चलते ही रहे।
रोशनी ने आवाज दी जब-जब आकर,
तुम अंधेरे में ही आँख मलते रहे।।

चमन रूठ आये तो इन वहारों का क्या होगा ?
दुल्हन रूठ जाये तो इन कहारों का क्या होगा ?
दर्दे-दिल के मरीज वैद्य ही वनते रहे यदि,
तो इन गरीव वीमारों का क्या होगा ?

भाग्य से नहीं, मैं भगवान् से हारा हूँ।
नीर गंगा का नहीं, मैं जल खारा हूँ।
गैरों से शिकायत नहीं मेरी,
दोस्त ! मैं तो अपनों का मारा हूँ॥

काहिल के हाथ में तकदीर रोती है।
जाहिल के हाथ में तदवीर होती है।
खून को पसीने में वदल दो जवानो,
पसीने की वूंद अनमोल मोती है॥

रूप तुम्हारा पूनम की छटा है।
विखरी अलकें सावन की घटा है।
निगाह की तलवार मारने वाले,
वता तो दे, हमारी क्या खता है ?

भेंट के लोभ में भगवान् नहीं छलता।
प्रेम की नगरी में अभिमान नहीं चलता।
रूप के जल्वे का इतना गुमान कैसा ?
दुपहरी का सूरज, क्या शाम को नहीं ढलता ?

चिकनी राहों पर कदम फिसल जाते हैं।
चंचल निगाहों पर सनम मचल जाते हैं।
मौज की मस्ती में मिले हजारों साथी,
दर्दभरी वस्ती में यार वदल जाते हैं॥

श्रेष्ठ प्राणी सृष्टि में आदमी को मानते हैं।
आत्मा परमात्मा की वात सारी जानते हैं।
धर्म की धुरी कहाते जगत् में जो,
खून पीते आदमी का और जल को छानते हैं॥

सांस-सांस को सौरभ दे वह फूल है।
नजर-नजर में चुभे, वही तो शूल है।
पीड़ा का पैगाम लिए आता है जो,
प्यार वही चिर-परिचित भूल है।।

रोशनी देखी दिये की, दर्द पहचाना नहीं।
सूर्य का आलोक देखा, जलन को जाना नहीं।
चांदनी पूनम की हंसती ही लगी तुमको,
ग्रहण चन्दा को लगे, यह सत्य अनजाना नहीं।।

इकरार नहीं कर सकते तो, इन्कार नहीं करना।
प्यार नहीं कर सकते तो, व्यापार नहीं करना।
पीर जगे तो बहलाना गीतों से उसको,
सुख-पाहुन के आने का इन्तजार नहीं करना।।

दीप बनकर कालिमा में जल रहा हूं।
वेदना की धूप में मैं पल रहा हूं।
नाप लूँगा राह की दूरी क्षणों में,
तोलकर साहस, धरा पर चल रहा हूं।

जीवन सांस के तारों का साज होता है।
कल नहीं आता कभी, केवल आज होता है।
मासूम चेहरे से बहलना मत दोस्त!
हर जिन्दगी में कोई राज होता है।।

कहने से सुनना अच्छा है।
पढ़ने से गुनना अच्छा है।
पुरानी पगडण्डी को छोड़,
नया सही मार्ग चुनना अच्छा है।।

तारों के गिनने से रात नहीं कटती है।
आहें भरने से यों पीर नहीं घटती है।
व्यर्थ लुटाते नयनों के मोती तुम,
आंसू पीने से प्यास नहीं मिटती है।।

प्राण रहेंगे जब तक, तब तक आश रहेगी ।
अधर रहेंगे जब तक, तब तक प्यास रहेगी ।
महकेगी पुष्पों की बगिया तब तक,
जब तक हवा चलेगी, सांस रहेगी ।।

साधक को पाप से डरना पड़ता है ।
कर्ज बाप का बेटे को भरना पड़ता है ।
मौत का भय पलायन है जिन्दगी से,
जीने के लिए इन्सान को मरना पड़ता है ।।

दिल मिले कैसे जहां दीवार होती है ।
जीत मिलती प्रीत में, वह हार होती है ।
नजर-अन्दाज नयनों को करें कैसे ?
तलवार से पैनी, नजर की धार होती है ।।

अमां की हर रात बुरी नहीं होती ।
प्यार की बातें कभी पूरी नहीं होती ।
दिल मिल गये परस्पर अगर,
तो गगन-धरा में दूरी नहीं होती ।।

दरवाजे बन्द करो, खिड़कियां खोल दो ।
मन बांधो मत, बन्धन खोल दो ।
मौन की मनाही नहीं करता तुम्हें,
"नहीं बोलूंगा" बस इतना ही बोल दो ।।

देश का इतिहास बनता नहीं, बनाया जाता है ।
इन्कलाब का शैलाब आता नहीं, लाया जाता है ।
पानी में लकीरें खींचने वाले बहुत मिलेंगे,
शोणित बहाने वाला विरला ही नजर आता है ।।

इतिहास कागज नहीं, पुरखों की थाती है ।
गुमराह जनता के लिए दीये की बाती है ।
अतीत को भुलाना आसान नहीं होता,
समय गुजर जाता (और) बात रह जाती है ।।

तन्हाई में नयन छलक जाते हैं।
अन्तर–पीड़ा आंसू कह जाते हैं।
कोलाहल में भाव भटक जाते,
खामोशी में गीत उभर आते हैं।।

हाथों में आकर यह समय निकल जाता है।
बातों से ही केवल काम न बन पाता है।
पौरुष का संबल साथ रहे गर जीवन में,
मरुधर भी मधुवन बन जाता है।।

कमजोर पौधे तूफान में नहीं टिकते हैं।
कवि स्याही से नहीं, खून से लिखते हैं।
भाटों की विरुदावलि सुनने वालों!
गीत पैसों पर नहीं विकते हैं।।

संप्रदाय की आग में इंसान हर बार जला है।
धर्म के नाम पर पाप का अभिशाप पला है।
मजहब के नाम से भाइयों को लड़ाने वालों!
तुमने आदमी को नहीं, भगवान् को छला है।।

राहें मंजिल से राही को भटकाती हैं।
चाहें अधरों तक ही घुटकर रह जाती हैं।
वाणी मूक बने भावों के आगे जब,
(तो) नयनों की भाषा सब कुछ कह जाती है।।

गीत और नज्म नहीं, सिर्फ दो हरफ चाहता हूं।
धो सके यादों का दाग, वह सर्फ चाहता हूं।
सही नहीं जाती जलन अन्तर की अब,
तपन मिटादे मन की वह वर्फ चाहता हूं।।

जिन्दगी मैं तन्हाई काटी नहीं जाती।
दर्द की दरारें गीतों से पाटी नहीं जाती।
कुरेदो न यादों की धार से मेरे जख्मों को,
वेदना दिल की परायों को वाँटी नहीं जाती।।

परायों की तरह नजरें चुराकर यार मत वोलो।
तुला दौलत की लेकर तुम, हमारा प्यार मत तोलो।
कलश अमृत का कव चाहा, कहो तुमसे ?
इस चार दिन की जिन्दगी में जहर मत घोलो॥

फटे दामन को हर वार सीये जा रहे हैं।
नित नये नारे देश को दिये जा रहे हैं।
सपनों की आदत वहुत पुरानी है हमारी,
इसलिए वादों के भरोसे जीयें जा रहे हैं॥

महकने के लिए सौरभ का खजाना चाहिए।
चहकने के लिए गमों को भुलाना चाहिए।
शरावे-जाम का नशा काफी नहीं होता,
वहकने के लिए निगाहों का मयखाना चाहिए॥

सांस लेना ही सिर्फ जिन्दगानी नहीं है।
वीस वर्ष की उम्र का नाम जवानी नहीं है।
लपट वन कर जीना घड़ी भर का भी सार्थक है,
सुलग-सुलग जीने का कोई माने नहीं है॥

गम की घटाओं से प्रकाश को छलक आने दो।
चेहरे पर मुस्कान की विजली चमक जाने दो।
अधरों की अर्गला बुजदिली होगी,
हृदय के भावों को जुवां पर मचल जाने दो॥

समय की मार से वुजदिल टूटते हैं।
गाफ़िल मुसाफिर को ठग लूटते हैं।
निराश न होना जीवन की कठोरता से,
चट्टान की छाती से ही निर्झर फूटते हैं॥

संदेश दोस्ती की घातक छुरी होती है।
विश्वास तो प्रेम की मजबूरी होती है।
सम्प्रदाय का उन्माद हद से गुजर जाने पर,
इन्सान से इन्सान में दूरी होती है॥

अंधेरे से रोशनी का हाल मत पूछो।
अपाहिज से बढ़ने की चाल मत पूछो।
क्या गुजरती है तुम्हारी बेरुखी से,
दर्दे–जिगर का मलाल मत पूछो॥

संगीनों से सैलाब नहीं रुकता है।
अंधियारे में महताब नहीं छुपता है।
मंजिल पर बढ़ने वाला राही,
तूफानों से कभी नहीं झुकता है॥

दिल के एवज में तो हमें दर्द मिला है।
तुम्हारी बेरुखी के जख्म को छीला है।
उम्मीद लगाये थे सपनों की मुद्दत से,
आज तो नींद न आने का भी गिला है॥

सूरज के आने पर रात नहीं रहती।
यारी में खुदगर्जी की घात नहीं रहती।
होठों पर लाख शिकायत हो चाहे,
मिलने पर कहने को बात नहीं रहती॥

निराशा का अंधेरा विश्वास ही हरेगा।
मौत को ललकारो तो काल भी डरेगा।
माटी के दीपों से प्रकाश मत मांगो दोस्त !
अपने मन का दीपक ही आलोक भरेगा॥

नित नये नारों से कान बहरे हो गये हैं !
करों की चुभन से घाव गहरे हो गये हैं।
जनता की फरियाद दलों के दल-दल में डूब गई,
और न्याय के मंदिरों पर पहरे हो गये हैं॥

गुलशन नहीं, मुझको भले उजड़ा हुआ संसार देदो।
जगत् के दु:ख-दर्द का जलता हुआ अंगार देदो॥
शिकवा नहीं संसार से होगा कभी गर तुम।
मुझे एक पल के प्यार का उपहार देदो॥

—चन्दनमल चाँद

आज हमें खुशियों का उपवन लगाना है,
हर मानव का दु:ख दर्द मिटाना है,
ले सके हर कोई सुख की सांस अतः,
अहिंसा और सत्य की विगुल बजाना है।

निश्चय ही हमें ईश्वर को पाना होगा,
उसमें अविचल विश्वास जमाना होगा,
यदि हमें बनना है उसका बन्दा, तो,
मन को ईश्वर का निवास बनाना होगा।

हर क्रिया की एक निश्चित सीमा होती है,
जिसके अंदर उसे पूर्ण करना पड़ता है,
जैसे जीने की आकांक्षा रहने पर भी,
एक दिन हर आदमी को मरना पड़ता है।

हर चीज की उपयोगिता एक सी नहीं होती,
हर आदमी से हर काम नहीं लिया जाता,
जैसे सागर तो सबको जीवन देता है,
लेकिन सागर का पानी नहीं पिया जाता।

जो तुम्हें चाहिये था वह तो पूर्ण हो चुका,
जितना बाकी है, उतना ही बस मिलता है,
जैसे गुलाब में कोई कमल नहीं खिलता,
गुलाब में तो गुलाब ही केवल खिलता है।

अपने ज्ञान के बिना सब ओर अंधेरा है,
समझ के बिना दुनिया भूतों का डेरा है,
खुद जो निकलने का रास्ता नहीं जानता,
उसके चारों तरफ कांटों का घेरा है।

चांदी सा उजला दिन काली रात हो जाता है,
फूल सा कोमल दिल भी इस्पात हो जाता है,
बस पूछो मत जब बुरे दिन आते हैं आदमी के,
सांस का प्राण पवन भी झंझावात हो जाता है।

आदमी का असन्तोष आदमी को खा रहा है,
महान् बनने की चिन्ता में लघु होता जा रहा है,
और खेद की बात तो यह कि उसे पता तक नहीं,
कि वह कितना भद्दा बेसुरा गाना गा रहा है।

रुको मत चलते रहो बुझो मत जलते रहो,
सागर की लहरों ज्यों हर क्षण मचलते रहो,
घबराओ मत कैसा भी समय आजाये,
समय के मुताबिक अपने को बदलते रहो।

क्या कहें बहुत ही अजीब दुनिया से,
अजीब नाता हो गया है हमारा,
शैतान का काम करके भी,
दिखावा भगवान् का करना पड़ता है।

सत्य का स्वभाव नहीं बदलता कितने ही प्रहार हो जायें,
और कड़े से कड़े कितने ही बुरे व्यवहार हो जायें,
तथा विकृत और मथा हुआ दूध भी स्नेह ही देता है,
सज्जन कभी बदलता नहीं कितने ही अत्याचार हो जायें।

जिन्हें देखने का इलम नहीं, उन्हें मार्ग में,
पड़ा ढेला भी चट्टान दिखाई देता है,
जिन्हें आनन्द लेने का तरीका नहीं,
उन्हें मेघा

दुनिया का सारा खेल देखने की कला पर,
निर्भर है तुम चाहे खोज करके देख लो,
जिन्होंने अपनी नजर को बारीक बना लिया,
उन्हें झमेला भी समाधान दिखाई पड़ता है।

धीरे से सांस लेकर भी,
कोलाहल तूफान का करना पड़ता है,
और जहर निगल करके भी,
अभिनय मधुपान का करना पड़ता है।

दूसरों के कन्धे पर बन्दूक रखकर चलाना बहादुरी नहीं है,
दियासलाई के सहारे औरों को जलाना बहादुरी नहीं है,
लड़खड़ाते हुए वैशाखी के सहारे चलना कोई चलना है,
मेरे विचारों में स्वयं सोया रहकर औरों को जगाना
बहादुरी नहीं हैं।

फूल महकता है तो उसका परिपार्श्व महतिस वहां
ऐसा कब होता है।
दीप जलता है और उसका परिपार्श्व आलोकिक न हो
ऐसा कब होता है,
श्रोताओं पर असर की चिन्ता करने वाले वक्ताओं
जरा बताओ तो,
वर्षा होती है और भूमितल हरित न हो
ऐसा कब होता है।

भाप लेनी है तो पानी कम गर्म नहीं खोलना चाहिये,
अगर रंग लाना है तो हिना को पानी में घोलना चाहिये,
ओ शेखी बघारने वाले मेरे हम दोस्तो,
जनता के समक्ष हमारी जुबा नहीं नसीहत चलाना चाहिये।

कर्तव्य चल दिये है, अधिकार रह गये हैं।
उठ गया करंट सिर्फ तार रह गये हैं।
क्या पूछते हो हम से हमारे चमन के हाल,
झर गये गुलाब, सिर्फ खार रह गये हैं।

जिन्हें हम मानते हैं, पूजते हैं, जिनके स्मारक बनाते हैं,
मौन रहते हैं जिनकी याद में, आंसू बहाते हैं,
कसम खाते हैं हम, जिनके चरण चिह्नों पे चलने की,
मनाकर दो मिनट गम उनका, उनको भूल जाते हैं।

अगर सपने अधूरे उनके, पूरे कर न पायेंगे,
जिधर उनके कदम हैं, उस तरफ यदि चल न पायेंगे,
कोई नाटक रचा या, नाम पर मजमा लगायेंगे,
तो खुद भी डूब जायेंगे और उनको भी दुखायेंगे।

समन्दर का महत्त्व किनारों से है,
और अम्बर का महत्त्व सितारों से है,
खुदगर्ज मक्कारों को कौन पूछता है,
पैगम्बर का महत्त्व विचारों से है।

दोस्त मूर्खों के प्रकार हजार हैं,
और इसमें भी अनेकानेक विचार हैं,
मेरे अपने विचार भी जरा सुनलो,
काठ का उल्लू तो बिलकुल ही बेकार है।

घर छोड़ जंगल में रहने वाला संन्यासी बनवासी है,
और महलों में रहने वाली नौकरानी, रानी नहीं दासी है,
तुम अपने व्यक्तित्व पर इतराओ तो कोई एतराज नहीं,
मगर, गैरों के इशारों पर नाचने वाला स्वामी नहीं चपरासी है।

भगवान् को पहचानना है तो पहले इन्सान को पहचानों,
और अध्यात्म को जानना है तो पहले ईमान को जानो,
बिन्दु को पहचाने बिना बोलो सिन्धु को कैसे पहचानोगे ?
भगवान् के एहसान से पहले आदमी के एहसानों को मानो।

जो अपनी पहचान करा दे वह ज्ञान है,
जो उलझे को सुलझाये वह ध्यान है,
और सबसे तो प्रतिपल मिलता है आदमी,
पर जो अपने से मिला दे वह निर्वाण है।

जो दिलाया जाता है वह विश्वास नहीं अविश्वास है,
जो पढ़ाया जाता है वह ज्ञान नहीं ज्ञानाभास है,
जो जीवन व्यवहार से नहीं केवल जवाव है,
दरअसल वह उपदेश नहीं कोरी बकवास है।

तुम कहते हो मेरी ऐसी तकदीर नहीं है,
दर असल तकदीर वने वैसी तदवीर नहीं है,
सच कहता हूँ स्वयं को जकड़ने के खातिर,
हर भावों के समान कोई जंजीर नहीं है।

पहले जब
मुझे हंसना होता था,
मैं दहाड़े मारकर रोया करता था,
अपनी हठधर्मी की अभिव्यक्ति के लिये,
किन्तु आज जब
मुझे रोना होता है।
मैं ठहाके मारकर हंसा करता हूं।
जानता हूँ दुःख सहाजाता है, कहा नहीं जाता।

कामना खामोश सी रहने लगी,
जिन्दगी का आ गया जैसे विराम,
नम्रता वदनाम हो रोने लगी,
लुट गई उनकी दौलत तमाम।

प्याय कहीं हो तो चुपके से,
गीत कहीं गाओ तो धीरे से
हम तुम प्यार तो करलें लेकिन,
धड़कन न सुनले कोई धीरे से

हुस्न वाले हैं कही धूप न लगने देना,
कली के अरमानों को न जलने देना,
कहारों धीमे चलना पर्दा न हिल जाये,
नई दुल्हन है कहीं शर्मा न जाये।

तुमसे खुशिया मैंने कब मांगी,
तुमने कब पास बुलाया मुझे
हर बार मैंने खुशिया अर्पण करदीं,
हर बार चौराहे पर लूटा मुझे।

संकटों से जूझना एक अरमान हो,
देश पर मर मिटना एक अभिमान हो,
पर सेवा हो लक्ष्य इस जीवन का,
दीन दुःखी जग के सच्चे भगवान् हो।

फूलों से ही क्या, कांटों से भी प्यार करो,
पतित हो गये जो जग में उनका भी उद्धार करो,
जीवन को तुम स्वार्थ में ही मत बिताओ,
आदमी हो, तुम हर आदमी से प्यार करो।

सेवा और कर्तव्य से प्यार करेंगे,
निर्लेप सरल सत्य का प्रसार करेंगे,
हम नई दिशा से नई विधाते,
सुविचार से सुकर्म की राह चलेंगे।

ठहरे हुए पानी को रोकना नहीं बहाना चाहिये,
सुलगी हुई आग को भड़काना नहीं बुझाना चाहिये,
पत्ते की बात कहता है यह 'गुलशन' सभी से,
कि गिरे हुए को गिराना नहीं उठाना चाहिये।

दुश्मन को गर जीतना हो तो बाजू में शक्ति चाहिए,
मंजिल को यदि पाना हो तो पैरों में गति चाहिए,
कोशिश करो इस दुनिया में सब संभव है 'गुलशन',
भगवान् को यदि पाना हो दिलों में भक्ति चाहिये।

तुम चाहो तो वीरानों को भी आबाद बना सकते हो,
तुम चाहो तो झूठे अभिमानों को बर्वाद कर सकते हो,
पर इसके लिए कुछ त्याग व कुर्वानी की जरूरत है
गर चाहो तो तुम गुलामों को भी आजाद कर सकते हो।

दिन-दिन बढ़ती नई उलझनें, सुलझ नहीं पाती हैं,
हल होती है एक अगर तो चार नई आती हैं,
काका भटक रही है दुनिया उल्हान सुलझाने को,
मिले त्याग से शांति हमें, गुरुवाणी बतलाती है।

चले अन्दर कतरनी क्या करेगी हाथ की माला,
भरी जब तक की इच्छायें, मिले न मुक्ति का प्याला,
अगर है मोक्ष की रक्षा तो काका मन करो वश में,
तुम्हारी वासनाओं ने तुम्हें बरबाद कर डाला।

जो तुम्हारा है विलग तुमसे कभी होगा नहीं,
जो विलग हो जायगा वह तो तुम्हारा है नहीं,
आया पर को जान जग से दृष्टि जिसमें फेरली,
मुक्ति चूमेगी चरण इसमें इजारा है नहीं।

पेश्तर इसके कि एक पैना हो उठे और दूसरा भोथरा,
पेश्तर इसके कि एक गर्म हो उठे और दूसरा ठंडा,
पेश्तर इसके कि एक शक करे दूसरा शुबह,
पेश्तर इसके कि यकीन खो बैठे और दूसरा एतबार,
अच्छा है कि दोनों अलग हो जायें।

पेश्तर इसके कि एक आंख मूंद ले और दूसरा मान,
पेश्तर इसके कि एक मुंह फेर ले और दूसरा पीठ,
पेश्तर इसके कि एक बोले और दूसरा बड़-बड़ करे,
पेश्तर इसके कि एक उबला पड़े और दूसरा भड़क उठे,
अच्छा है कि दोनों अलग हो जायें ।

आज का आदमी पहुंच तो गया है आकाश,
किन्तु धरती पर जिन्दगियां ले रही अवकाश,
मन से मन की दूरी को किसने तोड़ा है,
क्या भूख की खाई पाटेगा यह विज्ञानी विकास ।

संग्रहकर्ता : **अमृतलाल नाहर**

"आज लोगों की बुद्धि बहिर्मुखी हो गई है । बुद्धि दृश्यमान पदार्थों को पकड़ने दौड़ती है लेकिन बाह्य पदार्थों को पकड़ने से आत्मा की खोज नहीं हो सकती और न कल्याण ही हो सकता है ।"

"धन को साध्य मानने के बदले साधन माना जाय और लोकहित में उसका सद्व्यय किया जाय तो कहा जा सकता है कि धन का सदुपयोग हुआ है।"